# क्रम

## ऊंचे स्वर



## धीमे स्वर



## अपने स्वर

# अचकन का गुलाब

दिल कांपता है। कलम रुकती है। कैसे कहें वह मर गया, जिसने हमें ज़िन्दगी दी। कैसे कहें वह आज हममें मौजूद नहीं है, जो आज हम सबमें मौजूद है—जिसने हमारी बुद्धि को संवारा, हमें राजनीतिक समझ-बूझ दी, जो हमारे दौर का सबसे शानदार व्यक्तित्व था। कैसे कहें वह रोशनी बुझ गयी, कैसे कहें अब हम उस अचकन का गुलाब नहीं देख सकेंगे।

दिल कांपता है और बहुत दूर जाता है—लाहौर के ब्रेडला हाल में इंडियन नेशनल कांग्रेस का जलसा तै हो चुका था। उसी वक्त हमने लाहौर स्टूडेंट्स यूनियन की तरफ से लाजपतराय हाल में विद्यार्थियों का एक जलसा बुलाया था, जिसमें नेहरूजी को आने की और विद्यार्थियों के सामने भाषण करने की दावत दी गयी थी। एक तरफ कुछ सिरफिरे नौजवानों का जलसा था, दूसरी तरफ कांग्रेस का। पंजाब नेशनल कांग्रेस के प्रेसिडेंट स्वर्गीय डा० सत्यपाल ने सुनकर कहा: "पंडितजी तुम्हारे जलसे में नहीं आयेंगे।" हमारा खयाल था, वह आयेंगे, ज़रूर आयेंगे। और पंडितजी आए और देर तक पचास-साठ जोशीले नौजवानों की टोली से खुलकर बातचीत करते रहे। उनके साथ डा० सत्यपाल भी थे।

डा० सत्यपाल पंडितजी की बातचीत के दौरान बार-बार घड़ी देखते और हमारे [illegible] थे कि खत्म होने को न आते थे। आखिरकार डाक्टर साहब ने [illegible] कान में कहा: "ब्रेडला हाल के जलसे में बहुत-से लोग [illegible] रहे हैं।"

[illegible] गये। होंठ चबाते हुए बोले: "इंतजार करते

है तो करते रहें। मेरे खयाल में यह जलसा ज्यादा जरूरी है।"

हम नौजवानों के सीने गज-गज-भर फूल गए। हमने बड़े गर्व से पंडितजी की तरफ देखा। फिर डा० सत्यपाल की तरफ, जो इस हमले से कुछ बुझ-से गए थे। पंडितजी फिर मुस्कराकर नौजवानों से बातें करने लगे। बातें इकलाब की, बातें समाजवाद की, बातें आजादी की, बातें अफ्रीका की। चीन की, जापान की, साम्राज्यवाद से लड़ने की, सारी दुनिया के गरीबों के दुःख दूर करने की। आज ये बातें बहुत मामूली मालूम होती हैं। वह हमारी चेतन और अचेतन बुद्धि का एक हिस्सा बन चुकी हैं। लेकिन अगर कोई भी गौर से सोचे, पूरी तरह पीछे जाए तो उसकी बुद्धि में कहीं न कहीं नेहरू की कोई तस्वीर उभरेगी, कोई ऐसा वाक्य, जिसने भारत की आजादी का सवाल सिर्फ भारत की आजादी तक सीमित नहीं रखा था, बल्कि उसे सारी दुनिया के सवालों से बांध दिया था। वह जब तक जिए, भारत और भारत के बाहर की दुनिया के बीच एक पुल बनकर जिए। कौन है जो इस पुल पर नहीं चला है? नेहरू से मुहब्बत करनेवाले, नेहरू को पसंद करनेवाले, नेहरू से जलनेवाले, सब अपनी जिन्दगी के किसी न किसी हिस्से में, अपनी राजनीतिक जिन्दगी के किसी वर्ष में इस पुल पर चले हैं। और आज जब इस पुल की मेहराबें टूट गयी हैं, हम उस बोझ को महसूस कर सकते हैं, जिसने आधी शताब्दी तक अपने कंधों पर इस भार को उठाया था।

लाजपतराय भवन की उस छोटी-सी राजनीतिक गोष्ठी में सबसे पहले मैंने पंडितजी को इतने करीब से देखा। सफेद सफ्फाली अचकन, सफेद चूड़ीदार पायजामा और नाजुक कलाई पर खूबसूरत-सी घड़ी, सोने की तरह भड़कता हुआ नौजवान चेहरा—जिन्होंने नेहरू की नौजवानी को देखा है, उन्होंने उनका कोई दूसरा चेहरा नहीं देखा। दिन और साल गुजरते रहे, देश आजाद हुआ, देश का बटवारा हुआ। देश आगे बढ़ा, देश पीछे हटा, देश पर हमला हुआ। मगर हमने नेहरू का कोई दूसरा चेहरा नहीं देखा। लोग कहते हैं और फोटोग्राफर तस्वीरें दिखाते हैं कि नेहरू के

चेहरे पर लकीरें और झुर्रियां आ गयी हैं। मगर हमने आज तक नेहरू के चेहरे पर कोई झुर्री और लकीर नहीं देखी। जिंदगी से मौत तक हमने सिर्फ उनका बेदाग चेहरा देखा है। और दुश्मनों का कोई हरबा और मौत का कोई डर उस चेहरे को हमारे दिल से नहीं भुला सका। नेहरू की नौजवानी सदाबहार थी और आज जो हम रोते हैं तो इसलिए नहीं रोते कि हमारा प्रधानमंत्री मर गया, इसलिए रोते हैं कि एक नौजवान मर गया, जो अगर और जीता तो देश के ईंट-पत्थरों में और गुलज़ार खिलाता···

नेहरू की सारी जिन्दगी राजनीति में गुज़री, मगर मेरे खयाल में नेहरू का दिल अंदर से एक शायर का दिल था—एक राजनीतिज्ञ का दिल नहीं था······एक लेखक का दिल था, एक सैलानी का दिल था, एक आशिक का दिल था, एक सपने देखनेवाले का दिल था। राजनीति की भाव-ताव करनेवाली मछली मंडी में वह सबसे अलग-थलग आज़ाद नज़र आता था। उसकी आवाज़ के लहजे, उसकी नज़र की बुलंदी, उसकी सोच की अदा सबसे निराली थी। अगर देश गुलाम न होता, तो मुमकिन है, वह 'भारत की खोज' के बाद दूसरे देशों की भी खोज करता, मगर उसके सामने और उसके लाखों देशवासियों के सामने और कोई रास्ता नहीं था। उनके दिल की शायरी उन्हें अंग्रेज़ों के जेल की तरफ खींचकर ले गयी। लोगों ने नेहरू को 'हैमलेट' कहा है, मगर कैसा हैमलेट था वह कि जब उसने ब्रिटिश सरकार के सीने में अपनी तलवार उतार दी, उसने सिर्फ अपना कथारसिस[1] नहीं किया, पूरी अंग्रेज जाति का कथारसिस कर दिया। यह कैसी अजीब बात है कि नेहरू के दुश्मन बहुत थे मगर वह किसीका दुश्मन नहीं था। यही वजह है कि जब चीन ने दोस्ती के परदे से छुपकर हमपर वार किया तो नेहरू का दिल खून हो गया। उसकी ज़बान से पहला वाक्य जो निकला वह यह था, "यह एक गैर-शरीफाना हरकत है।" जिन लोगों के लिए राजनीति एक पेशा या रोज़-

---

१. दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।

गार है, वह इस वाक्य को कभी नहीं समझ सकते।

नेहरूको अपनी ज़िंदगी में क्या कुछ नहीं मिला। प्रकृति ने खूबसूरती दी, जनता ने प्यार दिया, स्थितियों ने ताकत दी, मगर कैसा अजीब आदमी था वह? उसने उस खूबसूरती, उस प्यार, उस ताकत का नाजायज़ फायदा नहीं उठाया। उसके कान हमेशा जमीन से लगे रहे, दिल हमेशा जनता के दिल के साथ धड़कता रहा, रूह आसमानों में उड़ानें भरती रही। उसकी कमजोरी यह थी कि वह कभी हाकिम नहीं था, वह एक दोस्त था, एक सलाहकार था, एक टीचर था। ज्यादा से ज्यादा वह एक बाप था। मगर कैसा बाप, जिसे न सिर्फ अपनी बेटी इंदिरा से प्यार रहा, बल्कि जिसे अपने देश और अपने देश से बाहर लाखों-करोड़ों बच्चों की जिंदगी से और उनके भविष्य से प्यार रहा। आज जब, हममें से हर आदमी अपने दिल में उसकी अर्थी उठाए चल रहा है, जी चाहता है उससे कहें—हमें छोड़कर दूर चले जानेवाले, हम सब तेरे बेटे हैं। हम तेरे नाम को बदनाम न करेंगे, तेरे घर को न उजाड़ेंगे, तेरे सपनों को अपनी कोशिशों का खून देकर ज़िंदा रखेंगे।

नेहरू अल्पसंख्यकों के लिए बहुत नर्मदिल थे। नेहरू के पास वह समझ थी, जो सांप्रदायिकता से बहुत ऊंचा उड़ती है और हर अल्पसंख्यक के दुःख और दर्द को पहचानती है। जिस देश में पांच करोड़ मुसलमान, एक करोड़ ईसाई, एक करोड़ सिख और छः करोड़ हरिजन रहते हों उस देश की राजनीति को नर्मदिली, दोस्ती और हमदर्दी की कितनी ज़रूरत है और अपने देश में इसकी कितनी कमी है, इसका पूरा अंदाज़ा नेहरू को था। इस महाद्वीप में बहुत कम पूरे आदमी पैदा होते हैं, ज्यादातर आधे आदमी पैदा होते हैं, या तीन-चौथाई आदमी, मगर पूरे आदमी बहुत कम पैदा होते हैं। और नेहरू एक पूरा आदमी था, जो ज़िंदगी के पहलुओं में बड़ी खूबी से हावी था। पुराने हिंदू ऋषियों से उसने सेवा की भावना ली। हिंदू और मुसलमानों की मिली-जुली ज़िंदगी से सभ्यता के अंदाज सीखे। मार्क्स और लेनिन से सोशलिज्म को

रोशनी हासिल की। गांधी से अहिंसा और कार्यक्षेत्र में सच्चाई को अपनाया और इन सबको मिलाकर अपना रास्ता तैयार किया। लोग उससे विरोध कर सकते हैं, उसकी कमजोरियों पर उंगली रख सकते हैं, उसके काम में सुस्तरफ्तारी का शिकवा कर सकते हैं मगर नेहरू की लगन, उसकी सच्चाई, ईमानदारी और जनता से उसके गहरे प्यार से किसीको इंकार नहीं हो सकता। उसकी निगाह सिर्फ राजनीति पर नहीं थी, सांइस पर भी थी, साहित्य पर भी, कल्चर पर भी, इतिहास पर भी, अर्थशास्त्र पर भी, संगीत पर भी और नृत्य पर भी। वह होली भी खेलता था और बच्चों का घोड़ा भी बन जाता था और दूसरे पल अंतर्राष्ट्रीय सवालों को सुलझाने में बड़ी संजीदगी से लग जाता था। ऐसा पहलूदार और तहदार व्यक्तित्व शताब्दियों में पैदा होता है और जब पैदा होता है तो देश-काल की सरहदें तोड़कर सारी दुनिया का हो जाता है। इसलिए आज जो हमारा गम है, सारी दुनिया का गम है। और सिर्फ भारत का झंडा ही नहीं सारी दुनिया का झंडा झुका हुआ था।

यह सच है कि नेहरू ने बहुत-से काम अधूरे छोड़े हैं, मगर एक आदमी दिन में अठारह घंटे काम करके भी कितना काम कर सकता है? सदियों की गुलामी का असर सत्रह साल के छोटे-से अर्से में दूर नहीं हो सका, क्योंकि काम बहुत है और वह चला गया है। और राहों पर लोग भीख मांगते हैं और गरीब दाने-दाने को तरसते हैं।

ऐसे में तू चला गया। पर हम तेरी याद को जिंदा रखेंगे। तेरे काम को आगे बढ़ाएंगे। हम तेरी मिट्टी की कसम खाके कहते हैं, हम कभी उसकी बेकदरी नहीं करेंगे। हमारी याद में तेरी अचकन के गुलाब सदा [illegible]।

# एक आदमी, कैनेडी नाम का...

जिस वक्त कैनेडी को गोली लगी। उस वक्त मैं सो रहा था। सुबह देर तक सोता रहा, बहुत देर के बाद जब अखबार खोला तो उस वक्त कैनेडी को स्वर्गवास हुए कई घंटे गुजर चुके थे।

हमेशा तो नहीं लेकिन कभी-कभी मैं सोचता हूं कि मैं अकेला हूं और अपने व्यक्तित्व में रचा-बसा हूं और परिपूर्ण हूं—मुझे कुछ और नहीं चाहिए, शायद मेरे व्यक्तित्व से परे कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं! कभी-कभी तो ऐसा आभास होता है कि मेरे व्यक्तित्व से परे कुछ भी तो नहीं है।

मगर अखबार खोलते ही मुझे लगा मानो एक विशाल संसार मेरे बाहर भी बसता है और वह मुझे इस प्रकार पूर्ण करता है जैसे हाथ, शरीर को, और वह मेरे लिए उसी तरह जरूरी है जैसे विचारों के लिए मस्तिष्क और कविता के लिए भाव।

अगर मैं पूर्ण होता तो अखबार खोलने से पहले अपने व्यक्तित्व से मुझे उस घटना का ज्ञान होता मगर सुबह उठकर हाथ में अखबार लेते वक्त तक मेरे अंदर पूर्ण शांति थी, किसी तरह की उथल-पुथल नहीं थी; इस विषम घटना का दूर-दूर तक कोई आभास तक न था, क्योंकि कैनेडी बाहर का आदमी था—मेरे व्यक्तित्व से बाहर, मेरे बाहर से बाहर, मेरे देश से बाहर, मेरे कलचर से बाहर...फिर यह क्या हुआ कि जैसे ही अखबार खोला, एक गोली-सी दिमाग में लगी। बाहर की दुनिया बड़े जोर से अंदर की दुनिया से टकरायी, लहरें उछलीं और संगम की तरह एक-दूसरे में समा गयीं। मैं घायल भी हुआ और पूर्ण

भी—अकेला न रहा, दुनिया का एक हिस्सा बन गया। क्यों मुझे ऐसा लगा जैसे उस गोली का निशाना मैं भी था ?

उस दिन जैसा कुछ मुझे लगा अधिकांश संसार के हर हिस्से में करोड़ों आदमियों ने वैसा ही कुछ अनुभव किया होगा। बड़े अचंभे की बात है कि उस दिन मेरा बेटा भी रोया और उसने मुझे बताया कि उसके स्कूल में बहुत लड़के रोए थे—लड़के जो उसकी तरह लगभग टेडी-ब्वॉय कहलाते हैं—जो तंग मोहरी की पतलूनें पहनते हैं—अखबार में सिर्फ फिल्म और स्पोर्टस् का पेज देखते हैं—जो देखने में केवल अपने व्यक्तित्व में मग्न रहते हैं—जिनके बारे में मेरा विचार था कि वे लोग बाहर की दुनिया में और उसकी राजनीति में किसी तरह की रुचि नहीं लेते—जब ऐसे लड़के भी रोने लगे तो समझो संसार एक हो चुका है—बाहर की दुनिया और अंदर की दुनिया के बीच जो ऊंची दीवार कई कालों से खड़ी थी—डलास के धमाके ने उसे एक ही झटके में तोड़ दिया और कैनेडी का खून जोर से वह निकला और दूर-दूर तक फैल गया—मास्को की गलियों ने इस खून को देखा और न्यूयार्क के मीनारों ने—जापान के मछेरों ने और अफ्रीका के जंगलों ने इस खून को देखा है और उसे पहचान लिया है। हर आदमी राजनीति को नहीं समझता है और विश्व की समस्याओं को भी नहीं समझता है—लेकिन हर आदमी शहीद के खून को पहचानता है। मनुष्य का पवित्र और स्वच्छ खून, निखरते काव्य और सुंदर अभिलाषाओं से महकता शहीद का खून—जो उबलता है तो लावे की तरह गिरता है और ठंडा होता है तो खाद का काम करता है।

कैनेडी के खून से एक नयी सभ्यता का जन्म होगा और एक नये संगम का निर्माण होगा—ऐसा मेरा विचार है। अभी बहुत-से मोड़ आयेंगे और शायद कितने ही और धमाके होंगे क्योंकि यह दीवार अभी पूरी तरह टूटी नहीं है और भूत-काल का बोझा हमपर इतना भारी है कि हर कोई उसे अपने कंधे पर उठाकर बहुत तेजी से दौड़ भी नहीं सकता है। अभी बहुत-से मुश्किल काम आयेंगे जब किसी न किसी की जिंदगी मौत के

दहाने पर खड़ी होगी और मनुष्य का सारा भविष्य काल के गाल में समा जाने को होगा। उस वक्त भी किसी न किसी शहीद का खून—एक या एक से अधिक साफ, सच्चे और खरे आदमियों का खून हमारे आड़े आएगा क्योंकि मनुष्य की आत्मकथा में कैनेडी का खून किसी पहले शहीद का खून नहीं है और न आखिरी का—मगर जब हम अपने भविष्य को तबाही से बचा ले जाएंगे और यह दुनिया एक होगी और आज की संतान हमसे अच्छे और सुंदर संसार की रचना करेगी, तो वे कैनेडी के खून की कविता को झुककर प्रणाम करेंगे, इस भावना के साथ और इस विचार के अधीन होकर कि जॉन एफ० कैनेडी अमरीका का ही सपूत नहीं था, वह एक ऐसा आदमी था जिसके नाते-रिश्तेदार सारी दुनिया में फैले हुए थे।

जॉन एफ० कैनेडी को किसने मारा ? ओसवाल्ड ने या किसी और ने ? एक दोषी ने या एक से अधिक दोषियों ने ......? यह केस अमरीका के उच्च न्यायालय में है और वही लोग इसका निर्णय करेंगे।

लेकिन एक निर्णय मनुष्य की अपनी अंतरात्मा के न्यायालय का भी होता है और जब मैं अपने अंदर को खटखटाता हूं तो ऐसा लगता है जैसे हममें से हरएक ने कैनेडी को मारा है !

जब कैनेडी का वध हुआ उस वक्त मैं सोया हुआ था और शायद इसीलिए कैनेडी को मारा जा सका क्योंकि उस वक्त हममें से बहुत-से लोग सो रहे थे या ऊंघ रहे थे या पूरी तरह से सजग नहीं थे। इसी तरह अज्ञान और बेसुधी और स्वार्थ और लालच के अंधेरे में बहुत-से इंसान शहीद होते हैं। इसी तरह गांधी शहीद हुए थे, इसी तरह अब्राहम लिंकन, इसी तरह कैनेडी, इसी तरह और भी होंगे, क्योंकि हम नहीं जानते कि इन सबका खून हमारा अपना है और इस धरती पर सारे इन्सानों का आदम एक है !

क्या कैनेडी की मौत से कुछ लोग खुश भी हुए हैं ? सुना है डलास के कुछ स्कूलों में बच्चों को इस खुशी में मिठाई दी गयी। मुझे याद आता है कि इसी तरह गांधी जी की हत्या पर बम्बई के कुछ लोगों में मिठाई बांटी गयी थी ! यह समानता कितनी विचित्र है ? अंधेरे के पुजारी हर जगह

होते हैं। वे लोग जो पाप की आराधना करते हैं और सूर्य से डरते हैं—ये बुजदिल जो छुपकर अपने भिटों में बैठकर इंसान की नज़रों से दूर हटकर इंसान के भविष्य पर गोली चलाते हैं, किसी तरह इंसान कहलाए जाने के अधिकारी नहीं हैं। उनकी आत्मा में पाप और स्वभाव में स्वार्थ है। ये लोग एक दिन मिठाई देते हैं और फिर सारी ज़िंदगी भूखा मारते हैं।

कैनेडी की मौत का शोक बहुत बड़ा है। जवान आदमी, सुंदर आदमी, दो प्यारे-से बच्चों का बाप, एक सुघड़-सुशील पत्नी का पति, अमरीका का अध्यक्ष, जीवन और शक्ति से भरपूर, माथे पर विशालता और आंखों में विश्व-शांति का सुंदर आदर्श, देखते-देखते मौत का निशाना बन गया। ऐसे आदमी की मौत पर किसे दुःख न होगा! जिस प्रेम करने वाली पत्नी से उसका पति छीना जाए, जिन अबोध बच्चों के जीवन की पहली मंज़िल में उनका बाप खत्म कर दिया जाए, उनके दुख से किसकी छाती न फट जाएगी! हिटलर बहुत बड़ा आदमी था लेकिन उसके मरने पर भी हममें से किसीने मिठाई न बांटी थी क्योंकि मौत सबको क्षमा कर देतीहै; लेकिन कुछ लोग मौत के बाद भी क्षमा नहीं करते। आज कुछ लोग ऐसे हैं जो कैनेडी की अच्छाइयों को क्षमा नहीं कर सकते, यह सोचकर बड़ा दुख होता है।

लेकिन इससे ज़्यादा दुख इस बात का है कि कब तक सचाई इसी तरह शहीद होती रहेगी? क्या इंसान के भाग्य में यही है कि उसका जो कदम भी आगे उठे शहीद का खून बहाए बिना न उठे? कहने को गांधी एक आदमी था, और कैनेडी भी एक आदमी था, लेकिन कभी-कभी एक आदमी अपनी अंतर-ज्योति से सारे संसार को आलोकित कर देता, ऐसे आदमियों की मौत बलिदान का रूप धारण कर लेती है, मगर लोग यह भूल जाते हैं और फिर अपने अज्ञान से एक आदमी के खून कीमत लाखों आदमियों के खून से चुकाते हैं। इसलिए जी यह कहने चाहता है—ए जॉन! भगवान करे ये लोग तेरे खून की आवाज़ पायें, तेरी आंखों के स्वप्न देखें और इस संसार को एक छोटा-सा वार बना डालें!

धीमे स्वर

की धड़कन रुक जाने से चल बसा तो दिल और दिमाग चलते-चलते एक लम्हे के लिए रुक गए। दूसरे लम्हे में यह यकीन न आया, दिल और दिमाग यह मानने के लिए तैयार ही नहीं थे कि कभी ऐसा हो सकता है। एक लम्हे के लिए मंटो का चेहरा मेरी निगाहों में घूम गया। उसका चमकदार-चौड़ा माथा, वह तीखी-व्यंग्यभरी मुस्कराहट, वह शोले की तरह भड़कता हुआ दिल कभी बुझ सकता है। दूसरे लम्हे यकीन करना पड़ा। रेडियो और समाचारपत्रों ने इस खबर की पुष्टि कर दी कि मंटो मर गया है। आज के बाद वह कोई नई कहानी नहीं लिखेगा, आज के बाद उसकी खैरियत का कोई खत नहीं आएगा।

आज सर्दी बहुत है और आसमान पर हल्के-हल्के बादल छाए हुए हैं। मगर इन बादलों में बारिश की बूंद भी नहीं है। मेरी आंखों में आंसुओं का एक कतरा भी नहीं है। मंटो को रोने-रुलाने से बेहद नफरत थी। आज मैं उसकी याद में आंसू बहाकर उसे परेशान नहीं करूंगा। मैं धीरे से अपना कोट पहन लेता हूं और घर से बाहर निकल जाता हूं।

अजीब संयोग है कि जिस दिन मंटो से मेरी पहली मुलाकात हुई, उस दिन मैं दिल्ली में था और जिस दिन वह मरा है, उस दिन भी दिल्ली में हूं। उसी घर में हूं, जिसमें आज से चौदह साल पहले वह मेरे साथ पंद्रह दिन के लिए रहा था। घर के बाहर वही बिजली का खम्बा है, जिसके नीचे हम पहली बार गले मिले थे। यह वही अंडरहिल रोड है, जहां आल इंडिया रेडियो का पुराना दफ्तर हुआ करता था। यहां हम दोनों काम किया करते थे। यह मेडन होटल का बार है, यह मोरी गेट पर मंटो का घर है, यह जामा मस्जिद की सीढ़ियां हैं, जहां हम कबाब खाते थे, यह उर्दू बाजार है—सब कुछ वही है, उसी तरह से है। सब जगह उसी तरह से काम हो रहा है। आल इंडिया रेडियो भी खुला है, मेडन होटल का बार भी, उर्दू बाजार भी, क्योंकि मंटो एक बहुत मामूली आदमी थे। वह एक गरीब लेखक था, मंत्री न था कि कहीं कोई झंडा उसके लिए झुकता। वह कोई सट्टाबाज ब्लैक मार्केटिया भी न था कि कोई

बाज़ार उसके लिए बंद होता। वह कोई फिलमस्टार भी न था कि स्कूल और कालेज उसके लिए बंद हो जाते। वह एक गरीब-सताई हुई भाषा का गरीब और सताया हुआ लेखक था। वह मोचियों, तवायफों और टांगे वालों का लेखक था। ऐसे आदमी के लिए कौन रोएगा, कौन अपना काम बंद करेगा। इसलिए आल इंडिया रेडियो खुला है, जिसने उसके ड्रामे सैकड़ों बार ब्राडकास्ट किए हैं। उर्दू बाज़ार भी खुला है, जिसने उसकी हजारों किताबें बेची हैं और आज बेच रहा है। आज मैं उन लोगों को भी कहकहा लगाते हुए देखता हूं, जिन्होंने मंटो से हज़ारों रुपये की शराब पी है। मंटो मर गया तो क्या हुआ? बिज़नेस बिज़नेस है। एक लम्हे के लिए काम नहीं रुकना चाहिए। वह जिसने हमें अपनी सारी जिन्दगी दे दी उसे हम अपना एक लम्हा नहीं दे सकते, सिर झुकाए एक लम्हे के लिए उसकी याद को हम अपने दिलों में भी ताजा नहीं कर सकते—शुक्र के साथ, आज़िज़ी के साथ, दिली हमदर्दी के साथ उस बेकरार रूह के लिए, जिसने 'हतक', 'नया कानून', 'खोल दो', 'टोबा-टेकसिंह' जैसी दर्जनों अद्वितीय और उत्कृष्ट कहानियों की रचना की। जिसने समाज की निचली तहों में घुसकर उन पिसे हुए, कुचले हुए, समाज की ठोकरों से घायल चरित्रों का सृजन किया, जो अपनी उत्कृष्ट चित्र-कारी और यथार्थवाद में गोर्की के 'लोअर डेप्थ' के चरित्रों की याद दिलाते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि उन लोगों ने गोर्की के लिए अजायब-घर बनाए, मूर्तियां खड़ी कीं, शहर बसाए और हमने मंटो पर मुकदमे चलाए, उसे भूखा मारा, उसे पागलखाने में पहुंचाया, उसे अस्पतालों में सड़ाया और आखिर में उसे यहां तक मजबूर कर दिया कि वह किसी इंसान को नहीं, शराब की एक बोतल को अपना दोस्त समझने पर मजबूर हो जाए। यह कोई नई बात नहीं है। हमने 'गालिब' के साथ यही किया, प्रेमचन्द के साथ यही किया, 'हसरत' के साथ यही किया। आज मंटो के साथ भी यही सुलूक करेंगे क्योंकि मंटो कोई इनसे बड़ा लेखक नहीं है, जिसके लिए हम अपने पांच हजार साल के कल्चर की

पुरानी परम्परा को तोड़ दें। हम इंसानों के नहीं, मकबरों के पुजारी हैं। आज दिल्ली में 'मिर्जा गालिब' पिक्चर चल रही है। इस तस्वीर की कहानी इसी दिल्ली में मोरी गेट में बैठकर मंटो ने लिखी थी। एक दिन हम मंटो की तस्वीर भी बनाएंगे और उससे लाखों रुपये कमाएंगे, जिस तरह आज हम मंटो की किताबों के जाली एडीशन हिन्दुस्तान में छाप-छापकर हजारों रुपये कमा रहे हैं। ये रुपये जिनकी मंटो को अपनी जिन्दगी में सख्त जरूरत थी, वह रुपये आज भी उसकी बीवी और बच्चों को गरीबी और जिल्लत से बचा सकते हैं। मगर हम ऐसी गलती नहीं करेंगे। अगर हम अकाल के दिनों में चावल की कीमत बढ़ाकर हजारों इंसानों के खून से अपना नफा बढ़ा सकते हैं तो क्या इसी मुनाफे के लिए एक गरीब लेखक की जेब नहीं कतर सकते। मंटो ने जब 'जेबकतरा' लिखा था, उस समय उसे पता नहीं था कि एक दिन उसे जेबकतरों की एक पूरी की पूरी कौम से वास्ता पड़ेगा।

मंटो एक बहुत बड़ा गाली था। उसका कोई दोस्त ऐसा नहीं था, जिसे उसने गाली न दी हो। कोई प्रकाशक ऐसा न था, जिससे उसने लड़ाई मोल न ली हो। कोई मालिक ऐसा न था, जिसकी उसने बेइज्जती न की हो। बजाहिर वह तरक्कीपसंदों से खुश नहीं था, न गैर तरक्कीपसंदों से। न पाकिस्तान से, न हिन्दुस्तान से। न अंकल साम से, न रूस से। जाने उसकी छटपटाती, बेकरार, बेचैन रूह क्या चाहती थी। उसकी जबान बेहद कड़वी थी। अंदाजेबयां था तो कसैला और कटीला, नश्तर की तरह तेज और बेरहम। लेकिन आप उसकी गाली को, उसकी कड़वी जबान को, उसके तेज, नुकीले, कंटीले शब्दों को जरा-सा खुरचकर तो देखिए; अंदर से जिन्दगी का मीठा-मीठा रस टपकने लगेगा। उसकी नफरत में मोहब्बत, उसके नंगेपन में छिपाव, बदचलन औरतों की दास्तानों में उनके अदब की मर्यादा छुपी हुई थी। जिन्दगी ने मंटो से इंसाफ नहीं किया, लेकिन इतिहास जरूर उससे इंसाफ करेगा।

मंटो बयालीस साल की उम्र में मर गया। अभी उसके कुछ बरस

और सुनने के दिन थे। अभी-अभी ज़िन्दगी के कड़वे अनुभवों ने, समाज की निर्ममताओं ने, पूंजीवादी व्यवस्था और ज़िन्दगी की गहरी असमताओं ने उसकी घोर वैयक्तिकता को कम करके उससे 'टोवाटेकसिंह' जैसी कहानी लिखवाई थी। ग़म मंटो की मौत का नहीं है। मौत अटल है, मेरे लिए भी और तुम्हारे लिए भी। ग़म उन न रचे गए शाहकारों का है, जो सिर्फ मंटो ही लिख सकता था। उर्दू अदब में अच्छे से अच्छे कहानीकार पैदा हुए, लेकिन मंटो दुबारा पैदा नहीं होगा, और कोई उसकी जगह लेने नहीं आएगा। यह बात मैं भी जानता हूं, राजेन्द्रसिंह बेदी भी और अस्मत चुगताई भी, ख्वाजा अहमद अब्बास भी और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' भी। हम सब लोग उसके रकीब, उसके चाहनेवाले, उससे झगड़ा करनेवाले, उससे प्यार करनेवाले, उससे नफरत करनेवाले, उससे मुहब्बत करनेवाले रफीक और हमसफर थे और आज जब वह हममें नहीं है, हममें से हरेक ने मौत की शहतीर को अपने कंधों पर महसूस किया है। आज हममें से हरेक की जिन्दगी का एक हिस्सा मर गया है; ऐसे लम्हे जो फिर कभी वापस न आ सकेंगे। आज हममें से हर व्यक्ति मंटो के करीब है और एक-दूसरे के करीबतर। ऐसे लम्हे में अगर हम यह फैसला कर लें कि हम लोग मिलकर मंटो की ज़िम्मेदारियों को पूरा करेंगे तो उसकी खुदकुशी बेकार नहीं जाएगी।

आज से चौदह साल पहले मैंने और मंटो ने मिलकर एक फिल्मी कहानी लिखी थी—'बनजारा'। मंटो ने अब तक किसी दूसरे लेखक के साथ मिलकर कोई कहानी नहीं लिखी थी। न इसके पहले, न इसके बाद। लेकिन वे दिन बहुत सख्त सर्दियों के दिन थे। मेरा सूट भी फटा हुआ था और मंटो का भी। मंटो मेरे पास आया और बोला, "कृश्न? नया सूट चाहता है?"

मैंने कहा, "हां।"

"तू मेरे साथ चल।"

"कहां?"

"बस ज़्यादा बकवास न कर! चल मेरे साथ।"

हम लोग एक डिस्ट्रीब्यूटर के यहां गए। मैं वहां अगर कुछ भी बोलता तो वाकई बकवास ही होता, इसलिए मैं खामोश रहा। वह डिस्ट्रीब्यूटर फिल्म-प्रोडक्शन के मैदान में आना चाहता था। मंटो ने पंद्रह-बीस मिनट की बातचीत में उसे कहानी बेच दी और उससे पांच सौ रुपये नकद ले लिए। बाहर आकर उसने ढाई सौ मुझे दे दिए, ढाई सौ खुद रख लिए। फिर हम लोगों ने अपने-अपने सूट के लिए बढ़िया कपड़ा खरीदा और अब्दुल गनी टेलरमास्टर की दुकान पर गए। उससे सूट जल्दी तैयार करने की ताकीद की। फिर सूट तैयार हो गए, पहन भी लिए गए। मगर सूट का कपड़ा दर्जी को देने और सिलने के दौरान हम बाकी रुपये घोलकर पी गए। चुनांचे अब्दुल गनी का उधार रहा और उसने हमें सूट पहनने के लिए दे दिए। मगर कई महीनों तक हम उसका उधार न चुका सके।

एक दिन मंटो और मैं कश्मीरी गेट से गुज़र रहे थे कि अब्दुल गनी ने हमें पकड़ लिया। मैंने सोचा, आज साफ-साफ बेइज़्ज़ती होगी। मास्टर अब्दुल गनी ने मंटो को गिरेबान से पकड़कर कहा, "यह 'हतक' तुमने लिखी है?"

मंटो ने कहा, "लिखी तो है, तो क्या हुआ? अगर तुमसे सूट उधार लिया है तो इसका यह मतलब नहीं है कि तुम मेरी कहानी के अच्छे नाकद (आलोचक) भी हो सकते हो? यह गिरेबान छोड़ो।"

अब्दुल गनी के चेहरे पर एक अजीब-सी मुस्कराहट आई। उसने मंटो का गिरेबान छोड़ दिया और उसकी तरफ अजीब-सी निगाहों से देखता हुआ कहने लगा, "जा तेरे उधार के पैसे माफ किए।"

वह पलटकर चला गया। कुछ लम्हों के लिए मंटो बिलकुल खामोश खड़ा रहा। वह इस अंदाज़ में बिलकुल खुश नहीं हुआ था, बहुत रंजीदा और खफा-खफा-सा नज़र आने लगा। "साला क्या समझता है। मुझे धमकाता है। मैं इसकी पाई-पाई चुका दूंगा। साला समझता है, 'हतक' मेरी अच्छी कहानी है! 'हतक' तो मेरी सबसे बुरी कहानी है।"

लेकिन न मैंने, न मंटो ने अब्दुल गनी को पैसे दिए, न उसने हमसे लिए। आज जब मुझे यह घटना याद आई तो मैं उसी समय अब्दुल गनी की दुकान ढूंढ़ता-ढूंढ़ता कश्मीरी गेट पहुंचा। लेकिन अब्दुल गनी वहां से जा चुका था। कई बरस हुए, पाकिस्तान चला गया था। काश, आज अब्दुल गनी टेलरमास्टर मिल जाता, उससे मंटो के बारे में दो बातें कर लेता। और किसीको तो इस बड़े शहर में इस फिजूल काम के लिए फुरसत नहीं है!

शाम के वक्त ज़ोए अंसारी, संपादक, 'शहराह', के साथ जामा मस्जिद से तीस हज़ारी अपने घर को आ रहा था। रास्ते में मैं और ज़ोए अंसारी आहिस्ता-आहिस्ता मंटो के व्यक्तित्व और उसकी कला पर बहस कर रहे थे, सड़क पर गड्ढे बहुत थे इसलिए बहस कई जगह बीच में टूट भी गई। एक बार पंजाबी कोचवान ने चौंककर पूछा, "क्या कहा? मंटो मर गया?"

ज़ोए अंसारी ने आहिस्ते से कहा, "हां भाई," और फिर अपनी बहस शुरू कर दी। कोचवान धीमे-धीमे अपना तांगा चला रहा था। लेकिन मोरी गेट के पास उसने अपना तांगा रोक लिया और हमारी तरफ घूमकर बोला, "साहब, आप लोग कोई दूसरा तांगा कर लीजिए। मैं आगे नहीं जाऊंगा।"

उसकी आवाज़ रुंधी हुई थी। इससे पहले कि हम कुछ कहते, वह हमारी तरफ देखे बिना अपने तांगे से उतरा और सीधा सामने की बार चला गया।

# मेरा हमदम, मेरा दोस्त

पहले तो सोचा शीर्षक बदल दूं। इस्मत के लिए 'मेरा हमदम, मेरा दोस्त' कहना किसी तरह से मुनासिब नहीं मालूम होता, फिर सोचा अगर 'मेरी हमदम, मेरी दोस्त' कहूंगा तो मेरी बीवी और इस्मत का शौहर—दोनों मुझपर मुकदमा कर देंगे, लिहाजा यही करार पाया कि शीर्षक न बदला जाए। अजीब मुसीबत है, टाइटिल मरदाना है, ज़िक्र जनाना।

गन्दुमी रंग की, दोहरे बदन की, ऊंची पूरी औरत! अच्छे-भले मरद को दो हाथ मार दे तो वहीं चीं बोल जाए। शक्ल व सूरत में बड़ी भोली और मासूम मालूम होती है, लेकिन है निहायत नटखनी और शरीर। ज़हर में बुझी हुई तबियत पाई है। निहायत मासूम बनकर महफ़िल में नख-शिख से दुरुस्त और गम्भीर होकर जब बैठती है, तो अक्सर लोग धोखा खा जाते हैं। सोचते हैं, जाने अब इसके मुंह से कैसे फूल झड़ेंगे। लेकिन जब फूल झड़ना शुरू हो जाते हैं, तो झड़ते ही जाते हैं, यहां तक कि सुननेवाले के चेहरे पर पतझड़ का मौसम छा जाता है। सूरत देखने लायक होती है उस वक्त उस बेचारे की। हज़ार दाव-पेंच से अपनी खिफ़्फ़त मिटाने की कोशिश करता है, मगर इस्मत कोई वार खाली जाने नहीं देती। और जब तक अच्छी तरह ख़िफ़्फ़त कर ले पीछा नहीं छोड़ती। इस्मत से गुफ़्तगू करना निहायत मुश्किल है। अक्सर तो हाथा-पाई तक की नौबत आ गई। मगर फिर इस्मत के कद्दोकामत (डीलडौल) को देखकर यार लोगों ने चुप होकर हार मानने में ही ख़ैरियत समझी है।

गुफ़्तगू का विषय कुछ भी हो, इसमें इस्मत को कोई सरोकार नहीं।

उसका असल मकसद दूसरे को जलाना और तपाना होता है, यहां तक कि प्रतिद्वन्द्वी भड़ककर गुस्से से फट पड़े। उस वक्त इस्मत के चेहरे की खुशी देखने के लायक होती है। मालूम होता है कोई बहुत बड़ा मोर्चा सर कर लिया हो। फिर वह एकदम बदल जाती है, और हारे हुए प्रतिद्वन्द्वी को रमी खेलने की दावत देती है, चाय पीने के लिए इसरार करती है और बेहद मीठे लहजे में बहस के विषय से हटकर इधर-उधर की बातें शुरू कर देती है। इस्मत को हारे हुए लोगों से हमेशा हमदर्दी रही है। लेकिन अपनी बात मनवाने वाले, हेकड़ी जताने वाले लोगों से वह हमेशा खार खाती है। और जब तक वह उन्हें नीचा न दिखा लें, उसे चैन नहीं आता। इस मामले में वह कज़-बख्शी की हद तक जा सकती है और अक्सर-औकात चली जाती है। अगर आप किसी शख्स या मसले के बारे में उसके खिलाफ बोलेगे तो वह खिलाफ बोलेगी। और अगर कभी जी चाहेगा तो हक़ में और खिलाफ दोनों तरह से बोलेगी। खुद ही एक बात कहेगी, और अगर आपने बहस से पीछा छुड़ाने की खातिर उसकी हां में हां मिलाई तो वह खुद ही अपनी राय की तरदीद-पर-तरदीद करती चली जाएगी और आपको गुफ्तगू में इस कदर उलझा लेगी कि आप बिलकुल अहमक और बेवकूफ नज़र आने लगेंगे। ऐसी खबीस औरत है इस्मत! बिलकुल बिल्ली है—बिल्ली! बहस के विषय को अपने पंजों में दाबकर वह एक चूहे की तरह नचाती है। कभी चिमगादड़ बनकर एक ही महफिल में दो फरीकों को लड़वाती चली जाएगी, कभी एक के हक में बात कहेगी, कभी दूसरे के हक में। कभी एक फरीक को शह देगी, कभी दूसरे को और फिर मुंह-दर-मुंह—उन दोनों के सामने एक-दूसरे की बातों को इस तरह तोड़-मोड़कर पेश करेगी कि दोनों फरीक लड़ने-मरने को तैयार हो जाएंगे। और जब नौबत यहां तक पहुंच जाएगी तो खुद ही हट जाएगी और बेहद मासूम बनकर और घबराकर कहेगी, "देखो, अगर लड़ना है तो बाहर जाकर लड़ो। मेरे घर में न लड़ो। मुझे लड़ाई से बड़ी वहशत होती है।"

मगर आज तक उसका यही एक अरमान बाकी है, "कुदान से तेरी कभी लड़ाई नहीं हुई। अव्वल नम्बर का हरामी है। हमेशा कन्नी काट जाता है। कभी बहस में नहीं उलझता।" और यह बिलकुल सच है, मैं इस्मत से कभी बहस नहीं करता। या तो साफ तरह दे जाऊंगा या 'मुझे मालूम नहीं' कहकर पीछा छुड़ा लूंगा। एक बार ज़रा-सी झक-झक हुई थी। हुआ यों कि हम दोनों का एक अज़ीज़ दोस्त इस दुनिया से चल बसा। हम दोनों निहायत ही कायदे से अफसुरदा और गूंज-भरे लहजे में अपने दोस्त की मौत पर बातचीत कर रहे थे। इतने में मेरे मुंह से निकल गया, 'हाय-हाय, बेचारे के छोटे-छोटे बच्चे यतीम हो गए।" फौरन इस्मत बोल पड़ी, "लो भई, यतीम होने में क्या बुराई है ? यतीम होने में तो सच बड़े मज़े हैं। एक बार हमारे रिश्ते की एक औरत के शौहर की मौत हो गई। उसकी बीवी अपने चार बच्चों को लेकर हमारे घर में आ गई। क्या बताऊं, उस घर के यतीम बच्चों ने कैसे-कैसे मज़े किये। स्कूल खुलने का ज़माना होता तो सबसे पहले उन यतीम बच्चों के दाखिले की फीस और किताबों का इन्तज़ाम किया जाता। ईद आती और दावत होती तो सबसे पहले उन्हीं को खाना खिलाया जाता था। यह कहकर कि बेचारे यतीम हैं। सच कहती हूं कृदान, उन बच्चों को देखकर मैंने अल्लाह मियां से कई बार कहा—'या अल्लाह ! मुझे भी यतीम कर दे।'"

उस दिन तरह-तरह की दिलचस्प मिसालें देकर इस्मत ने यतीम होने के फायदे कुछ इस तरह से बयान किए कि मेरा जी चाहा, सब कुछ छोड़कर-छाड़कर किसी यतीमखाने में भरती हो जाऊं।

गुफ्तगू का यह अन्दाज़ इस्मत को विरासत में मिला है, दरअसल इस्मत के मिज़ाज को उस वक्त तक सही तौर पर नहीं समझा जा सकता, जब तक उसके खानदान की दो और औरतों को देखा या सुना न जाए।

मेरा इशारा अज़ीमा और नज़र बाजी से है। बद-कामत व दबंग-

मिर्चें रखी हैं। सुई-धागेवाली टोकरी में पान रखे हैं और छालियों की पुड़ियां किसी पुराने स्लीपर के अन्दर घुसी हुई है। यह कैफियत कभी दिनों, कभी हफ्तों, कभी महीनों तक जारी रहती है। फिर एक दिन आओ तो घर आईने की तरह साफ-सुथरा मिलेगा। ड्राइंग रूम की हर चीज करीने से रखी हुई। डाइनिंग टेबल पर फल सजे हुए और मैट लगे हुए बैड रूम के पर्दे धुले हुए और हर चीज आरास्ता और सलीके से रखी हुई। मालूम होता है—इस्मत ने अफसाना या नाविल खत्म कर लिया है और अब खाली होकर घर की सफाई की तरफ ध्यान दे रही है।

आज से तेईस साल पहले मैंने और शाहिद लतीफ ने इस्मत की शादी तय कर दी थी। यह बात शायद इस्मत को मालूम नहीं है वरना मेरे लत्ते ले डालती। आज से तेईस साल पहले १९४० की एक सलोनी शाम का जिक्र है। मैं और शाहिद लतीफ जामा मसजिद, दिल्ली की सीढ़ियों पर बैठे हुए कबाब खा रहे थे और तय कर रहे थे। शाहिद लतीफ उन दिनों बहुत अच्छे अफसाने लिखा करता था और क्वांरा था। चटपटे कबाबों की लपट में बहुत-से नाम आए और खामोशी से निगल लिए गए। जब इस्मत का नाम आया तो शाहिद लतीफ खुशी से उछल पड़ा। मेरा हाथ पकड़कर बोला, "दोस्त! अगर मेरी शादी इस्मत से हो जाए तो मैं अपने-आपको दुनिया का सबसे खुशकिस्मत इन्सान समझूंगा।"

"इसमें क्या बात है।" मैंने कहा।

"मगर कोई तरकीब बताओ।"

[illegible] यह तजवीज निकाली गई कि इस्मत को तकरीर करने के लिए रेडियो स्टेशन बुलाया जाए। मैं उन दिनों रेडियो स्टेशन, दिल्ली पर मुलाजिम था। मैंने फौरन इस्मत को रेडियो पर तकरीर करने की दावत दी, मगर जब तक इस्मत दिल्ली आई, शाहिद दिल्ली से बम्बई जा चुका था, क्योंकि उसे बम्बई टाकीज में संवाद-लेखन की [illegible] मिल गई थी। फिर मैं दिल्ली

मैं लखनऊ चला गया। मैंने सुना कि इस्मत बम्बई चली गई है। फिर एक दिन इस्मत का खत लखनऊ आया, जिससे मालूम हुआ कि इस्मत की शादी शाहिद लतीफ से हो गई है। फिर मैं लखनऊ से पूना चला गया। वहां दो बरस रहकर बम्बई गया तो दोनो मेरी सूरत से बेजार नजर आते थे। शादी के पहले दिनो का रंग-रूप उड चुका था और दोनो अपनी अगली हालत और आदत को लौट रहे थे। शाहिद लतीफ पठान-बच्चा ! इस्मत—मुगल ! शाहिद लतीफ एक कामयाब निर्देशक ! इस्मत चोटी की कहानीकार—दोनो का खून जोश मारता था। कोई किसीमे दबने को तैयार नही था। वह धूमधाम से मिया-बीवी की लड़ाई होती थी कि देखने और सुननेवालो के छक्के छूट जाते थे।

मेरा विश्वास यह है कि मिया-बीवी की लडाई मे जो दखल देता है उससे बडा अहमक और बेवकूफ कोई नही होता। मेरा दूसरा विश्वास यह है कि हजार लड़ाई-झगडे और हठधर्मी के बावजूद मिया-बीवी एक-दूसरे से अलग नही हो सकते, क्योकि यह झगडा किसी सैद्धान्तिक मतभेद को लेकर खडा नही होता बल्कि निजी बातो पर होता है। कोई फिल्मी कहानी, स्क्रीन प्ले—इस्मत के सवाद और शाहिद के निर्देशन—इन बातों को लेकर आगे बढती जाती है। और इस्मत को जलाने-तपाने की आदत तो है ही। ऐसे-ऐसे जमले चुस्त करती है कि शाहिद जलकर खाक हो जाता है। दूसरी बात यह है कि हगामी मिजाज के बावजूद शाहिद और इस्मत के अन्दर एक मधुर विश्वास मौजूद है। दोनो एक-दूसरे की दिल से इज्जत करते हैं, चाहे एक-दूसरे को कितना ही कह-सुन लें। साथ ही दोनों अपनी दोनों बच्चियो से बेहद प्यार करते हैं ! अक्सर मैंने इस 'जह-रीली नागिन' को देखा है कि वह मा बनी हुई एक कुरसी के किनारे बैठी है और दूसरी कुरसी पर बैठी हुई अपनी सोलह वर्ष की बेटी सीमा के मुंह मे अपने हाथ से टुकड़े दे रही है। उस समय इस्मत पर एक विचित्र मोहिनी होती है जिसे बहुत कम लोगो ने देखा है। ज्यादातर लोगों ने सिर्फ इस्मत के तेजावी शब्द ही सुने हैं, वह उसकी शहद मे भी मीठी

बातों से परिचित नहीं है, जिन्हें वह रात-दिन अपने बच्चों पर उंडेलती रहती है। स्नेह से भरपूर—इस्मत।

अब तो कोई ध्यान नहीं देता, लेकिन पहले-पहले तो बम्बई के साहित्यिक तथा फ़िल्मी गोष्ठियों में इन झगड़ों को बड़ी गम्भीरता से लिया जाता था। किसी नये झगड़े के प्रारम्भ होते ही यार लोगों के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगतीं। दोनों को मनाने की तैयारियां शुरू हो जाती हैं—इधर इस्मत ऐंठ रही है, उधर शाहिद फैल रहा है और बीच-बचाव वाले हैं कि कभी इस्मत के हाथ जोड़ते हैं कभी शाहिद के। मेरा ख्याल है कि इस सारे खेल में इस्मत को सबसे ज़्यादा आनन्द आता होगा।

एक दिन सरदार जाफ़री मेरे पास घबराया हुआ आया। "करेशन !" वह बोला, "इस्मत और शाहिद में सख्त झगड़ा हो गया है।"

"छोड़ो भी।" मैंने कहा।

"नहीं करेशन ! यह वो वाला झगड़ा है, जो एक-दूसरे को अलग कर देता है—सदा के लिए।" सरदार बोला।

"हटाओ।"

"अरे अब मान जाओ। बहुत भयानक झगड़ा है। शाहिद लतीफ ने नेशनल स्पोर्ट्स क्लब में अलग रहने के लिए एक कमरा बुक कर लिया है। मैंने खुद टेलीफोन पर मैनेजर से बात करके मालूम किया है।"

'तब तो बहुत गन्दा मामला है।' मैंने सोचा।

दूसरे दिन जब मैं इस्मत के घर गया तो दोनों—मियां-बीवी सफेद कपड़ों में सजे, दो सुन्दर कबूतरों की तरह एक ही सोफे पर साथ-साथ लगे बैठे थे और इस्मत बड़ी मीठी आवाज़ में कह रही थी, "सीमा ! बेटा, अगर खरबूजे मीठे हों तो काटकर अपने पापा के लिए रेफरीज-

रेटर में रख देना।"

चुड़ैल!

सच और साफ कहने में इस्मत का जवाब नहीं है। उसकी बेबाक कहानियों और लेखों के कारण उसपर कई मुकदमे चल चुके हैं। मगर उसने हमेशा हर मुकदमा जीता है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि जब से यह साहित्य की दुनिया में आई है, एक ही मुकदमा लड़ती जा रही है। इस्मत को झूठ से, फरेब से, मक्कारी और धोखे से बेहद नफरत है। जिस तरह वह अपनी ज़िन्दगी में अपने मित्रों और मिलनेवालों की दोहरी ज़िन्दगी का बखिया उधेड़ती है, उसी तरह साहित्यिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन के हर हिस्से में घुसकर नुकीले कलम से हर फरेब का परदा फाड़कर, उसके चिथड़े बिखेरकर आपके सामने रखती जाती है। और एक ज़हर में बुझी हुई अलौकिक मुस्कराहट से कहती चली जाती है, "यह लो, यह लो! यह हो तुम, यह हो तुम! अब जो करना है कर लो तुम। जो काम मुझे करना था वह मैं कर चुकी। देखती हूं तुम मेरा क्या बिगाड़ लेते हो।" वह सिर्फ यही कहकर नहीं रुक जाती। ऊपर से ठेंगा भी दिखाती है। जब से वह साहित्य के मैदान में आई है, अपनी खुद की तारीफ या बदनामी की परवाह किए बगैर लड़ती चली जा रही है। उसके मुकदमे का अन्त क्या होगा, मैं कह नहीं सकता। सच तो यह है कि यह मुकदमा इस्मत का अकेला नहीं है, उसमें करोड़ों लोगों की ज़िन्दगियां बन्धी हुई हैं।

इस्मत में औरतों वाली आदतें बहुत कम हैं। सारी ज़िन्दगी वह एक मर्द की तरह लड़ी है और उसने संघर्ष किया। मगर है तो वह औरत। उसने प्यार भी किया है, शादी भी की है, बच्चे भी पैदा किए हैं और घरदारी भी की है। मगर किस प्रकार की औरत है वह। आज तक उसके आंसू किसीने नहीं देखे, पर वह [illegible] उसके मित्रों

में कहां से आया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि दुख को निचोड़ा जाता है तो आंसू बन जाते हैं और आंसू जमा किए जाने पर ज़हर की बूंदों में ढल जाते हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि एक दुःख को समझने वाला हृदय दुनिया की बेरहमी और निष्ठुरता से मजबूर होकर अपनी आत्मा की कोमलता को छिपाने के लिए कांटेदार खाल ओढ लेता है। मैं कह नहीं सकता, कोई भी नहीं कह सकता, किसीके दिल के अन्दर की दुनिया को समझना बड़ा मुश्किल है! मगर एक बार मुझे उस अन्दर की दुनिया की एक हलकी-सी झलक मिली थी।

गरमियां शुरू हुई थीं, मैं कुछ दिनों के लिए बम्बई छोड़कर दिल्ली आ बसा था, और इस्मत एक साहित्यिक कान्फ्रेंस में हिस्सा लेने के लिए दिल्ली आई थी और हमारे यहां मेहमान थी। दस दिन हम लोग इकट्ठे रहे। एक घर में—साथ उठना, साथ बैठना, खाना-पीना, गपशप, हंसी-मजाक, दावतें···मनमोहक बातों में दिन अप्रैल के बादलों की तरह उड़े जा रहे थे। मैंने इस्मत को कभी इतना सुखी और खिलखिलाते मूड में नहीं देखा था। और यह मेरी ज़िंदगी का एक नया अनुभव था, हालांकि मैं वर्षों से उसे जानता हूं।

मगर एक रात एक अजब बात हुई। रात के खाने पर बहुत देर तक खुशगपियां होती रहीं और देर तक हम सब लोग एक-दूसरे की बातों से आनन्दित होते रहे। फिर उस सुहाने मूड में हमने एक-दूसरे से 'गुड नाइट' कहा। उस रात गरमी कुछ ज़्यादा ही यौवन पर थी, इसलिए इस्मत ने आंगन में पंखा लगवाकर सोने की इच्छा ज़ाहिर की, जिसका प्रबंध कर दिया गया और हम लोग सोने चले गए। आधी रात के करीब अचानक मेरी आंख खुल गई, मालूम हुआ सहन में धीरे-धीरे कोई रो रहा है।

वह आवाज़ मैंने पहचान ली और पहचानकर मेरी हिम्मत नहीं पड़ी कि मैं अपने कमरे से बाहर निकलूं। ईंट और सीमेण्ट की दीवारों के परे कान लगाए मैं उन दबी-दबी सिसकियों को सुनता रहा, जो अब दबी-चीखों में बदलती जा रही थीं। मालूम होता था कि आज धरती

का सीना फट जाएगा।

सवेरे हम सब लोग अपने-अपने कमरों से निकलकर रोज़ की तरह मिले। इस्मत की आखें सूजी हुई थीं। मगर किसीने उससे इस बारे में बात नहीं की, इशारा तक नहीं किया, सिर्फ घर के नौकर ने घर की मालकिन को चुपके से बताया :

"रात को मेम साहब बहुत रोई थीं।" मैंने कहा न कि मैंने आज तक इस्मत के आंसू देखे नहीं, सिर्फ सुने हैं। बहुत जी चाहता है कि पूछूं, 'इस्मत, उस रात तुम क्यों रोई थीं ? किसके लिए वे आंसू थे और कैसे थे ? एक औरत के ? या एक मां के ? या एक धरती के ?'

बहुत जी चाहता है कि पूछ लूं।

मगर धरती की बेटी से पूछने की हिम्मत नहीं पड़ती। मगर उसने कहीं सच बोल दिया तो इतना बड़ा सच सहार लेने की शक्ति इस दुनिया में किसके पास है !

थे, जिनका अध्ययन मेरे लिए बेहद दिलचस्पी का कारण होता था। उन दिनों मैंने उसी होस्टल की पृष्ठभूमि को लेकर एक ड्रामा लिखा था, जो संभवत 'हुमायू' मे प्रकाशित हुआ था। उस ड्रामे मे मैंने हिन्दू होस्टल का नाम और अपने कमरे का नम्बर तक दे दिया था, जिसमें वह ड्रामा खेला जाता था। वह ड्रामा भी 'हुमायू' में छप गया और हमने पढ लिया और अपना नाम पत्रिका मे देखकर कुछ क्षणो के लिए खुश हो लिए।

उस ड्रामे के छपने के तीन या चार दिन के बाद मैं अपने कमरे के सामने के बरामदे मे बैठा हुआ शेव कर रहा था, कि मैंने देखा, एक साहब दुबले-पतले, लम्बे-सावले, एक छोटी-सी नेकर और कमीज पहने हुए, पाव मे चप्पल और मुह मे दातुन लिए चले आ रहे है और थोड़ी-थोड़ी देर बाद कमरों के नम्बर पढ लेते है और आगे चल देते हैं। फिर वह ॱयक मेरे कमरे के सामने रुक गए, कमरे का नम्बर पढ़ा, मुझे देखा ।—

ग्यो जी ? आप ही का नाम कृश्न चन्दर है ?"

ने शेव रोककर सिर हिलाकर कहा—"जी हा।"

यह सुनते ही वह अजनबी इस जोर से कहकहा मारके हसा कि आस- . के कमरो से भी कुछ विद्यार्थी बाहर निकल आए। कहकहा मारने बाद उन महाशय ने मेरी रान पर जोर का हाथ मारा और बोले— 'देखा पट्ठे ! कैसा पहचाना ?"

और उसके बाद वह मेरे करीब की एक खाली कुर्सी पर बैठकर बोले—"मेरा नाम उपेन्द्रनाथ अश्क है।"

कुछ क्षण तो मैं आश्चर्य और हर्ष के मिले-जुले भाव से अश्क को देखता रहा, क्योंकि अश्क मुझसे बहुत पहले लिखना शुरू कर चुके थे और मशहूर होकर कथाकारों की पहली श्रेणी मे आ चुके थे। उन दिनों सुदर्शन जी लाहौर से कथा-साहित्य की एक बहुत उम्दा पत्रिका 'चन्दन' प्रकाशित करते थे, उसमे अश्क की कहानियां अक्सर छपती थीं। मुलाकात से डेढ़-दो साल पहले मुझे ला कालेज के दरवाज़े पर मेरे किसी दोस्त ने

एक बहुत ही सुन्दर कपड़े पहने विद्यार्थी की तरफ संकेत करके कहा था—"वह हैं मिस्टर उपेन्द्र नाथ अश्क ! यह इन दिनों ला कर रहे हैं।"

मैं उन दिनों फार्मन क्रिश्चियन कालेज में पढ़ता था और अभी सिर्फ अपने कालेज के मैगज़ीन में लिखता था, लिहाज़ा मैं इतने बड़े साहित्यिक को दूर ही से देखकर बहुत ही खुश हुआ था।

जब मैंने अश्क को यह घटना सुनाई तो वह और भी ज़ोर से हंसा, इतने ज़ोर से हंसा कि हिन्दू होस्टल की चारदीवारी कांप गई। इसमें हंसी की कोई बात नहीं थी, मगर अश्क उस समय वास्तव में इस बात से अत्यन्त आनन्दित हो रहा था कि उसने मेरा निवास-स्थान कैसे ढूंढ लिया था।

"जानते हो ना, इतना बड़ा लाहौर का शहर है, फिर भी हमने तुम्हें ढूंढ़ निकाला, जानते हो कैसे ?" यह कहकर उन्होंने अब मेरी दूसरी रान को इस ज़ोर से बजाया कि मैंने फौरन तड़प कर कहा :

"कैसे ?"

"हुमायूं में तुम्हारा ड्रामा पढ़ा था, उसमें हिन्दू होस्टल का ज़िक्र था और कमरा नम्बर ४४ की पृष्ठभूमि थी, बस मैंने सोचा हो न हो मेरा यार वहीं रहता है। आज सुबह ही सुबह मैं दातुन करता हुआ जो नीले गुम्बद से चला तो सोचा तुम्हें देखता चलूं। दो-चार चीज़ें तुम्हारी अब तक पढ़ चुका हूं, बहुत उम्दा लिखते हो और बहुत तरक्की करोगे और बहुत दम है तुम्हारे स्टाइल में और वह जो कहा है किसीने कि 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' तो वह बात है तुममें, मगर यह तुम क्या करते हो कि अपने अफसानों का पारिश्रमक नहीं लेते, यह बहुत बुरी बात है और इससे बुरी बात कोई हो ही नहीं सकती कि एक इंसान अपने काम का पारिश्रमिक न ले, चाहे दो रुपये लो, पांच लो, मगर अपने अफसाने का पारिश्रमिक ज़रूर लो। तुम उन पब्लिशरों को नहीं जानते हो, मैं जानता हूं, खून पीते हैं, खून, गरीब लेखकों का। मगर हम सबको मिलकर उन पब्लिशरों से तलब करना चाहिए। बाथरूम किधर है ? मैं

थूकना चाहता हूं, दातुन से मुंह बहुत साफ होता है, दांत भी मजबूत होते हैं, मगर तुम मुझे ऐसे आदमी मालूम होते हो, जो दातुन के बजाय टुथब्रश इस्तेमाल करते होगे, है ना ?"

मैंने हां में सिर हिलाया कि फिर उन्होंने मेरी पीठ पर इस ज़ोर का हाथ दिया और उससे भी ज़ोर का कहकहा मारा। "हा हा हा···देखा, कैसे तुम्हें जाने-पहिचाने बग़ैर तुम्हारे मिज़ाज से वाकिफ हो गया हूं।" अश्क ने कहा, फिर फ़ैसलाकुन लहजे में कहा—"जिस लेखक में यह बात नहीं है, वह लेखक नहीं घसियारा है घसियारा।"

अपनी बेतकल्लुफ बातों से अश्क ने बहुत जल्द मेरी अजनबियत, डर और भ्रम दूर कर दिया और बहुत जल्द हम दोनों घुल-मिल गए, वह घुलते गए और मैं मिलता गया और चंद घण्टों के बाद ऐसा महसूस हुआ, जैसे हम दोनों एक-दूसरे को बर्षों से जानते हैं। और यह तो अश्क से जो कोई भी मिलेगा, मान लेगा कि अश्क के मिज़ाज में बेकार का बड़प्पन और गर्व नहीं है, जो बहुधा लेखकों में पाए जाते हैं। बहुधा लेखक अपने-आप-को इस तरह लिए-दिए रहते हैं, उनकी बातचीत में, व्यक्तित्व में, यहां तक कि चलने के अंदाज़ में ऐसी दशा होती है, जिससे यह गुमान होता है, जैसे सारी सृष्टि सिर्फ एक उसी अदीब के सहारे चल रही है और अगर लेखक खुदा न ख्वास्ता सोचना या लिखना बन्द कर दे, तो या तो ज़मीन की गति रुक जाएगी या आकाश धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ेगा। अश्क ऐसे लेखकों को बहुत बनाते हैं और मज़े ले-लेकर आनन्दित होते हैं। गंभीर और पक्की फबतीबाज़ी और चुटकुला कहने में राजेन्द्रसिंह बेदी का जवाब नहीं है, लेकिन असली मज़ाक में उपेन्द्रनाथ अश्क का कोई जोड़ नहीं है। अगर वह किसी अभिमानी लेखक को बनाने में शुरू में ही कामयाब न हों तो वह और भी अधिक स्थिरचित्तता से उसे बनाने पर तुल जायेंगे और एक कोशिश के बाद दूसरी उससे भी शानदार कोशिश करेंगे। लेखकों की एक महफ़िल बुलायेंगे, अपने खर्चे पर चाय पार्टी का इंतज़ाम करेंगे, दो-चार सौ रुपये अपने पास से खर्च कर देंगे और उस वक्त तक

कि मुआमला उसके बिलकुल विपरीत है। साहिर लुधियानवी महफ़िल के सबसे आखिर में अपने दो-चार हिमायतियों को लेकर बैठेंगे, सरदार-जाफ़री सबसे आगे आकर बैठेंगे और सिगरेट सुलगाते मुस्कराते हुए चारो तरफ़ इस तरह देखेंगे, गोया वह रहे हों, देख लो आ गया पलवान अखाड़े में ! गर्ज़ कि हर लेखक मजलिस में अपने व्यक्तित्व के प्रकट करने का एक तरीका रखता है और उसे सलीके से बरतना जानता है। हां, मगर कभी-कभी उसके इज़हार में उस वक्त झगड़ा हो जाता है, जब दोनो लेखकों का काम का ढंग एक-सा हो, मसलन मण्टो के लिए यह ज़रूरी था कि वह जिस महफ़िल में बैठे, सबसे ऊंची जगह पर नज़र आए और अगर किसी वजह से ऐसा नही हो सकता था तो वह कुर्सी पर पाव उठाकर उकड़ू होकर गुसलखाने का पोज़ देकर बैठ जाता था और फिर अपने तेज़ अमृतसरी लहजे में बारी-बारी सबको गालियां सुनाता था। अश्क का लहजा मण्टो से भी तीखा है, इसलिए जिस महफ़िल में यह दोनों इकट्ठे हो जाते थे, चिनगारियां उड़ती थीं।

इससे यही यह न समझना चाहिए कि अश्क का मिज़ाज हर समय क्रुद्ध रहता है, ऐसा नही है। अपने जीवन में वह नर्मरवी और नर्म बात-चीत के आदी हैं। उन्हें केवल उस समय गुस्सा आता है, जब वह देख लें कि कोई आदमी या अदीबों का कोई गिरोह उनकी काट पर आमादा है, या उनकी हैसियत को नज़रअदाज़ करने की कोशिश कर रहा है। फिर वह अपनी ज़िद पर उतर आते हैं और उस व्यक्ति या व्यक्तियों से पूरा-पूरा बदला लेने पर तुल जाते हैं। जब तक वह विरोधी को झुका न लें, [illegible] न लें उस वक्त तक यह अपना भी और दूसरों का [illegible] हराम कर देंगे। अगर नीयत नेक है तो अपने लिए बड़े [illegible] बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन बदनीयत विरोधी का एक चुभा [illegible] करेंगे और जब तक उसकी तबियत अच्छी तरह [illegible] चैन नही आएगा।

[illegible] रचित, धुन का पक्का लेखक बहुत कम देखा

चैन न लेंगे, जब तक वह अच्छी तरह से उसकी टांग न खींच लें। अश्क की बाग व बहार तबियत की यह ऐसी विशेषता है जिससे अक्सर लेखक उनसे भयभीत रहते हैं।

लेकिन इसके साथ उनके स्वभाव की एक प्राकृतिक दशा यह भी है, कि वह जिस महफिल में भी बैठे हों, अपना परिचय अच्छी तरह से कराए बग़ैर चैन नहीं लेंगे। मैं समझता हूं, इस जीवन में प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक पल अपने-आपको मनवाना चाहता है, अपनी ज़िन्दगी, और उसके महत्त्व को दूसरों से स्वीकार कराने पर हरदम तुला रहता है, यह ज़िन्दगी और उसकी चाहत है, जो शायद उससे ऐसा कराती है, मगर प्रत्येक व्यक्ति उसके लिए अलग-अलग तरीके इस्तेमाल करता है। अश्क का तरीका यह है कि वह किसी महफिल में अधिक देर तक चुप नहीं बैठ सकते। अगर साहित्यिक महफिल नहीं है और साहित्य की चर्चा से काम नहीं चल सकता, तो चुटकुले कहने पर उतर आयेंगे। इससे भी काम न बना तो वह आदमियों को लड़वा देंगे। इससे भी काम न बना तो भरी महफिल में उठकर बिना मतलब एक ज़ोर का कहकहा लगा देंगे। अभिप्राय यह होता है कि किसी न किसी तरह अपनी निशानदही हो जाए। इसके लिए अलग-अलग लेखक अलग-अलग तरीके ढूंढते हैं। मैं अक्सर ऐसी महफिलों में बहुत ही गंभीर और दुष्ट सूरत बनाकर बैठ जाता हूं, ताकि अगर लेखन का नहीं तो सूरत ही का रोब पड़े। बेदी हौले-हौले व्यंग्य-भरी फब्तियां कसते जाते हैं, मण्टो सीधे-सीधे गालियों पर उतर आते थे, अस्मत और अब्बास इस टोह में रहते हैं, कि कहीं कोई बहस छिड़े और वह विरोध करें। महेन्द्रनाथ कंधे हिलाकर हाथापाई पर तैयार हो जाते हैं, जांनिसार अख्तर और मुहम्मद हसन अस्करी ऐसी गैबी सूरत बनाकर बैठेंगे, इस तरह कान लपेटे, आंखें मूंदे, कन्धे झुकाए आपके सामने दो ज़ानू तह करेंगे और बीच-बीच में निहायत नम्र-लहजे में "जी हां, बिला शुबह, बजा इरशाद [illegible]आपने" [illegible] कि आपको अपनी योग्यता में कोई सन्देह [illegible]। [illegible] पीठ पीछे की बातचीत से मालूम होगा,

कि मुग्रामला उसके बिल्कुल विपरीत है। साहिर लुधियानवी महफ़िल के सबसे ग्राखिर में ग्रपने दो-चार हिमायतियों को लेकर बैठेंगे, सरदार-जाफ़री सबसे ग्रागे ग्राकर बैठेंगे ग्रौर सिगरेट सुलगाते मुस्कराते हुए चारो तरफ इस तरह देखेंगे, गोया कह रहे हों, देख लो ग्रा गया पलवान ग्रखाड़े में। गर्ज़े कि हर लेखक मजलिस मे ग्रपने व्यक्तित्व के प्रकट करने का एक तरीका रखता है ग्रौर उसे सलीके से बरतना जानता है। हां, मगर कभी-कभी उसके इज़हार में उस वक्त झगड़ा हो जाता है, जब दोनो लेखकों का काम का ढंग एक-सा हो, मसलन मण्टो के लिए यह ज़रूरी था कि वह जिस महफिल मे बैठे, सबसे ऊंची जगह पर नजर ग्राए ग्रौर ग्रगर किसी वजह से ऐसा नहीं हो सकता था तो वह कुर्सी पर पांव उठाकर उकडूं होकर गुसलखाने का पोज देकर बैठ जाता था ग्रौर फिर ग्रपने तेज़ ग्रमृतभरी लहजे मे बारी-बारी सबको गालियां सुनाता था। ग्रश्क का लहजा मण्टो से भी तीखा है, इसलिए जिस महफिल मे यह दोनों इकट्ठे हो जाते थे, चिनगारियां उड़ती थीं।

इससे कहीं यह न समझना चाहिए कि ग्रश्क का मिज़ाज हर समय क्रुद्ध रहता है, ऐसा नहीं है। ग्रपने जीवन में वह नर्मरवी ग्रौर नर्म बात-चीत के ग्रादी हैं। उन्हें केवल उस समय गुस्सा ग्राता है, जब वह देख लें कि कोई ग्रादमी या ग्रदीबों का कोई गिरोह उनकी काट पर ग्रामादा है, या उनकी हैसियत को नज़रग्रंदाज़ करने की कोशिश कर रहा है। फिर वह ग्रपनी ज़िद पर उतर ग्राते हैं ग्रौर उस व्यक्ति या व्यक्तियों से पूरा-पूरा बदला लेने पर तुल जाते हैं। जब तक वह विरोधी को झुका न लें, ग्रपनी बात मनवा न लें उस वक्त तक यह ग्रपना भी ग्रौर दूसरों का भी खाना-पीना हराम कर देंगे। ग्रगर नीयत नेक है तो ग्रपने लिए बड़े से बड़ा मज़ाक बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन बदनीयत विरोधी का एक चुभा हुग्रा वाक्य मुग्राफ नहीं करेंगे ग्रौर जब तक उसको तबियत ग्रच्छी तरह से साफ न कर लें, उन्हें चैन नहीं ग्राएगा।

मैंने ऐसा ज़िद्दी, स्थिरचित्त, धुन का पक्का लेखक बहुत कम देखा

है। जब अश्क ने लिखना शुरू किया, उस समय लेखकों के लिए परि-स्थितियां बिलकुल अनुकूल न थीं। वह तो आज भी नहीं हैं, लेकिन उन दिनों की दौड़-धूप बहुत ही कठिन थी, मगर अश्क ने परिस्थिति की परवाह न करते हुए न नौकरी की, न वकालत की, बल्कि केवल लेखन ही को अपना पेशा बना लिया। इसी धुन में उन्हें टी० बी० हो गई। उन दिनों तपेदिक से कोई आरोग्य करने वाला इलाज मौजूद न था, मगर अश्क मैदान से नहीं भागे, न उन्होंने अपनी दौड़-धूप छोड़ी, न तपेदिक के आगे घुटने टेके, माली-बदहाली और बहुत-सी परेशानियों के होते हुए वह दांत पीसकर कहते थे—"तुम देख लेना, मैं इस मूज़ी मर्ज़ को ही शिकस्त दे दूंगा, ब्राह्मण-बच्चा हूं, परशुराम की औलाद हूं मैं। मैं इस टी० बी० का तिया-पांचा कर दूंगा, मुझे मारना आसान नहीं है।"

आज से बीस वर्ष पहले जब उन्होंने हिन्दी में लिखना शुरू किया, तो किसीने उन्हें ताना दिया, आप उर्दू के तो अच्छे लेखक हैं, मगर हिन्दी के लेखक नहीं बन सकते, बस इसी बात पर गुस्सा आ गया और बिना थकान उस समय से हिन्दी में लिखते गए और इतना-इतना लिखा कि यारों को उनकी हैसियत स्वीकार करनी पड़ी। किसीने कहा, आप अच्छे ड्रामानिगार नहीं हो सकते, तो बस फिर ड्रामे पर ड्रामे लिखते चले गए। किसीने कहा, साहित्य में बड़े उपन्यासों की कमी है, इसपर बारह सौ पृष्ठ का एक उपन्यास 'गिरती दीवारें' लिख मारा, जिसके हिन्दी में अब तक छः संस्करण छप चुके हैं। एक बार टैक्स्ट बुक लिखने का इरादा किया, मगर यारों ने मिल-मिलाकर टैक्स्ट बुक कमेटी से उनका पत्ता काट दिया, इसपर अश्क ऐसे भड़के, ऐसे खफा हुए कि जब तक छः सूबों में अपनी किताबें बतौर टैक्स्ट बुक के मंज़ूर न करवा लीं, उन्हें चैन न आया। मेरा ख्याल है कि अश्क सिर्फ तानों पर जीते हैं और अगर यार लोग उन्हें ताने दे-देकर उनका मन न मैला करें, तो शायद वह उससे बैठ जायें, या लिखने ही से इन्कार कर दें। अधिकांश लोग अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए हर एक काम करते हैं, अश्क केवल दूसरों को

जलाने के लिए अपनी जिन्दगी बेहतर बनाते हैं।

अश्क पर कभी-कभी नम्रता और दीनता के दौरे भी पड़ते हैं, मगर बहुत ही विशेष महफिल मे, कभी-कभी और सिर्फ दो-एक के सामने। उनका यह रंग भी मैंने देखा है। कहा तो यह दावा कि अपने सामने अफलातून को भी खातिर मे नही लायेंगे और कहा यह रंग कि "नहीं, कुछ नही भाई, जिन्दगी काट रहा हू। कुछ लिखा नही जाता और जो लिखा जाता है, वह मजे का नही होता, बिल्कुल पोचे; जी चाहता है सब लिखे-पढे को आग लगा दू, और सन्यास लेकर हिमालय चला जाऊ, मगर फिर कौशल्या का ख्याल आता है, वह क्या करेगी और बच्चे नालायक हैं और दोस्त सब अलग हो चुके हैं मुझसे और सेहत है कि सभलने का नाम नही लेती, कुछ खाया-पिया नही जाता, खासी के दौरे अलग पडते हैं, मैं समझता हूं, मुझे तो इस वक्त भी हरारत-सी महसूस हो रही है, जरा नब्ज देखना मेरी," मगर इस किस्म के मोड आकस्मिक और बहुत ही थोड़े होते है और सभवत मुह का मजा बदलने के लिए प्रकट कर लिए जाते हैं।

अश्क की गाडी मे अगर एनर्जी दोस्तो के तानो से आती है, तो उसकी इजन-ड्राइवर उनकी पत्नी कौशल्या हैं। कौशल्या को अश्क की तबियत के सारे कल-पुर्जे मालूम है, अक्सर बीवियो की यह आदत होती है कि वह उन कल-पुर्जों मे तेल देने के बजाय रोड़े अटकाती रहती हैं और इस तरह अपनी अहमियत का एहसास दिलाती रहती हैं, मगर कौशल्या ने अश्क के लिए अपने-आपको मिटा डाला है, वह सही अर्थों में उनकी मददगार साथी, सहायक, दोस्त, प्रिय और जाने क्या-क्या हैं। अश्क अपनी रोजमर्रा की बातचीत में इतनी बार कौशल्या का नाम लेते है कि अगर सुननेवाला अजनबी हो तो, वह गालिबन् उस तारीफ को झूठ समझेगा। मगर कौशल्या के बारे मे अश्क जो भी कहे उसे कम ही समझना चाहिए। अश्क अपनी आर्थिक और समाजी हैसियत में जिस दर्जे तक पहुंचे हैं, उसमे कौशल्या की अनथक मेहनत और अनुसन्धान को भी

बहुत दखल है। कौशल्या को अश्क से काम लेना आता है और यह दोनों अब बिज़नेस में, साहित्य में, सामाजिक जीवन में इस कदर सम्बद्ध हो चुके हैं, इस कदर गड्ड-मड्ड हो चुके हैं कि बहुधा यह फैसला करना मुश्किल हो जाता है कि कौन अश्क है और कौन कौशल्या, कौन मियां है और कौन बीबी ?

अश्क ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भिक दौर में ही पब्लिशरों की ज़्यादती पर कुढ़ना शुरू कर दिया था। अक्सर-औकात उन्होंने मुझे, वेदी को, अब्बास को और दूसरे दोस्तों को मिलकर एक पब्लिशिंग हाउस खोलने की सलाह दी, जिसे हममें से कोई भी अपने स्वभाव की वजह से मंजूर न कर सका। पब्लिशरों और लेखकों की आपसी समस्याओं से हम लोग बखूबी आगाह थे, और पब्लिशर बनने के लिए जिस दिमाग-सोज़ी और शारीरिक कस-बल की आवश्यकता है, वह हम सबमें अश्क से बेहतर मौजूद था, मगर वह कुढ़न हममें न थी, वह जलन, वह भारी व्याकुलता, प्रतिशोध की भावना जो हमारी अनुसंधान की धारा पब्लिशिंग की तरफ मोड़ सकती। परन्तु अश्क की ज़िद्दी तबियत ने उनसे यह काम भी करा लिया। अगर वह अपने मुल्क के प्रधान मंत्री होते तो अब तक उन्होंने पब्लिशिंग को बहुत बढ़ावा दिया होता और हर जबान में लेखकों की आपसी एकता से को-आपरेटिव सभाएं बना डाली होतीं, लेकिन वह चूंकि इस पोज़ीशन में नहीं थे, इसलिए उन्होंने खुद ही पब्लिशिंग शुरू कर दी और आज उनका शुमार हिन्दी के उच्चकोटि के प्रकाशकों में होता है। लेखकों में ऐसे लोग बहुत कम पाए जाते हैं, जो उच्चकोटि के लेखक भी हों और उच्चकोटि के प्रकाश भी, जो बराबर बिकते भी रहें और बराबर किताबें छापते भी रहें, और छापकर उनकी उम्दा निकासी का बन्दोबस्त भी करते रहें। मगर अश्क तो हमेशा चौमुखी लड़ाई लड़ने के अभ्यस्त रहे हैं।

अश्क की सही अदबी हैसियत के बारे में तो कोई इतिहासकार ही लिखेगा, मगर अनुमान है कि उर्दू और हिन्दी की अफसानानिगारी और

ड्रामानिगारी में उन्हें हमेशा प्रथम श्रेणी में गिना जाएगा, यद्यपि वह किसी मैदान मे बन्द नहीं हैं, कहानी, ड्रामा, उपन्यास, हिन्दी कविता, निबंध, व्यग्य व हास्य—हर विभाग मे उन्होंने अपनी लेखनी का ज़ोर सर्फ किया है और पूरी खोज व परिश्रम और अपने गुणों के उत्तम उपयोग से उसे बनाया और सवारा है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में उन्होंने 'गिरती दीवारें' लिखकर सामाजिक उपन्यासो मे एक तरह की वृद्धि की है और अब वह इस बृहत् उपन्यास का दूसरा भाग लिख रहे हैं जो सभवतः 'गिरती दीवारें' ही की तरह ग्यारह-बारह सौ पृष्ठों का होगा। अश्क मध्यम श्रेणी के सबसे निचले वर्ग के लोगो की ज़िन्दगी पर कठोर पकड़ रखते हैं और उनकी समस्याओं को हमदर्दी से समझने, देखने, परखने और लिखने में उन्हें कमाल हासिल है। वह पुरपेच लेखन सज्जा मे विश्वास नहीं रखते, बल्कि प्रेमचन्द की तरह सादी और विकसित बोली पर ज़ोर देते हैं। जिस तरह वह ज़िन्दगी के दूसरे विभागो, विषयो में मेहनत और लगन से काम लेते हैं, उसी तरह अदब के मैदान मे अपनी कामयाब सलाहियत को अपनी अनथक कोशिश से लिखते हैं। अपनी किसी एक तहरीर को विलाशुबह दस-ग्यारह बार लिखना उनके लिए साधारण-सी बात है, यह नहीं कि जो एक बार लिखा गया सो लिखा गया। मेरे ख्याल मे तो वह अपने पात्रों से भी लड़ाई करते हैं—'अच्छा तो काबू मे नहीं आता है, देखता हू साले कैसे काबू मे नहीं आता है। मैं ब्राह्मण-बच्चा हूं, परशुराम की औलाद हू, परशुराम की, जब तक तुझे चारो शाने चित न गिरा लूगा, चैन से न बैठूगा। समझा क्या है तूने मुझे?' मेरे ख्याल मे वह किसी पात्र का निर्माण उसकी विशेषता या सामाजिक महत्त्व के कारण नही करते हैं, बल्कि उसे चारों शाने चित गिराने के ख्याल से करते हैं। वह उसे एक बार लिखते हैं, दो बार लिखते हैं, दस बार लिखते हैं और उस वक्त तक लिखते रहते हैं, जब तक वह उसके तमाम पहलुओं पर पूरी पकड़ हासिल न कर लें। भला ऐसे मे कहाँ भाग सकता है वह! खुद-बखुद हाथ बांधकर सामने हाज़िर हो जाता है और कहता है, 'खाकसार हाज़िर

है, आपका गुलाम है, फर्माइए क्या हुक्म है ?' बहुत-से लेखकों के पास जो अलादीन का चिराग होता है, वह उसे सिर्फ एक बार रगड़कर जिन्न को हुक्म देकर खामोश हो जाते हैं, मगर अश्क अपने चिराग को बार-बार रगड़ते हैं और जब तक जिन्न को अपनी ख्वाहिश के तमाम पहलुओं से मुकम्मिल तौर पर आगाह न कर लें, चैन से नहीं बैठते। इसीलिए आप उनकी साहित्यिक कृतियों में पात्र-चित्रण के आश्चर्यजनक नमूने देखेंगे, जो वर्षों की मेहनत का नतीजा है।

यह लेख अश्क की पचासवीं वर्षगांठ पर लिखा जा रहा है, मेरी दुआ है कि वह वर्षो-वर्षो-वर्षो ज़िन्दा रहें, अपनी बाग व बहार तबियत से दोस्तों की महफिल में चहकते रहें और अपने मानववादी व्यक्तित्व से हिन्दी और उर्दू के साहित्य को मालामाल करते रहें।

# सभापति की हास्य-चर्चा

हैदराबाद में हास्यरस के लेखकों, व्यंग्यसाहित्यकारों और कवियों का पहला सम्मेलन वास्तव में एक नवीनतम घटना है। मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि आपने कैसे और क्योंकर मुझे इस कान्फ्रेन्स का अध्यक्ष तय कर लिया। मैं तो वास्तव में एक कहानीकार हूं और केवल आंशिक रूप से एक व्यंग्यकार। अभी तक यही सोचता रहा कि आपके इस चुनाव में व्यंग्य का कौन-सा कोण छुपा हुआ है। यों तो हर कान्फ्रेन्स का एक अध्यक्ष होता है और उसका एक भाषण भी होता है। जिसे कभी वह खुद लिख-कर, कभी दूसरों से लिखवाकर श्रोताओं के सामने पेश करता रहता है। और बहुधा एक ही भाषण भिन्न-भिन्न जगहों पर देते हुए अपने पक्के-पन और आपके भोलेपन का सबूत देता रहता है। कल्पना में बहुत-से अध्यक्षों के चित्र उभरते हैं क्योंकि यह जमाना बहुरंगी है। इन दिनों अगर बीमारियों के नाम बढ़े हैं तो सभापति की गिनती में भी बढ़ावा हुआ है। सबसे अच्छा अध्यक्ष पब्लिक लाइफ में एक ऊंचा आदर्श और व्यक्तित्व रखता है। ऐसे अध्यक्ष को दो मील की दूरी से पहचान सकते हैं और करीब से बिल्कुल नहीं पहचान सकते। ऐसा अध्यक्ष प्राय. हर रोज सभा-पति होता है और हर हफ्ते में केवल एक दिन नागा करता है। यह पेशेवर अध्यक्ष उठते-बैठते बड़ी बेजारी से अपनी अध्यक्षता का जिक्र करता रहता है। "अजी क्या बताए, अभी एक भाषण से छुटकारा पाया था कि अब दूसरे की बारी है। कल शेरों के क्लब (Lion's club) के अध्यक्षीय भाषण से बड़ी मुश्किल से निपट लिया तो आज भेड़िया क्लब में अध्यक्षीय भाषण देना

लगा··· मैं ··मैं ··मैं'···की इतनी तकरार होती है कि सभापति पर किसी बकरे या वजीर होने का गुमान होने लगता है।

ऐसे लोग हुज्जतबाजी की बडी ताक मे रहते हैं और किसी एक विषय पर बद नही होते। यो देखने मे बडे पढे-लिखे मालूम होते हैं और पब्लिक लाइफ मे इनका बडा सम्मान होता है। वजीर होने के अलावा ये लोग मौलवी, पण्डित और पादरी भी होते हैं और यहा पर यह बात भी विशेष तौर पर ध्यान देने योग्य है कि—अग्रेजी भाषा मे वजीर और पादरी के लिए एक ही शब्द उपयोग मे लाया जाता है, यानी 'मिनिस्टर' (Minister)।

फिर एक वो अध्यक्ष भी होते हैं जो अध्यक्ष होने के बावजूद अध्यक्षता कम करते हैं और हाल मे बैठी हुई औरतो को ज्यादा घूरते हैं। आम तौर से ऐसे लोगो को 'दिलवरी' अध्यक्ष कहा जाता है। उनका भाषण भी आम तौर से अपने असली विषय से हटकर 'फेयर सेक्स' (Fair Sex) से नत्थी हो जाता है।

आजकल अध्यक्षो की एक नई किस्म भी मिलने लगी है और बहुत लोकप्रिय हो रही है। उनकी सूरत-शक्ल पर सत्य के बजाय सुन्दर का रग ज्यादा चोखा होता है। ये श्रोताओ को देखने के बजाय अपने-आप को ज्यादा देखते हैं। कही टाई ढीली न हो जाए, कही साडी का आचल ढलक न जाए। इनके नाज-नखरे 'कत्थक' के होते हैं। भाषण अवश्य किसी दूसरे का लिखा होता है। आम तौर पर इनको 'तस्वीरी अध्यक्ष' या 'फिल्मी अध्यक्ष' कहते हैं।

एक किस्म और भी याद आती है। बहुत ही मीठे, बहुत ही नरम मिजाज के, ये तलवारी अध्यक्ष के बिलकुल उलटे होते हैं। हमेशा लडाई-झगडे से दूर रहने और विश्व-शाति की बातें करते रहते हैं। घर पर हर समय दगा करते रहते हैं मगर मच पर आते ही शहद टपकाने लगते हैं। मीठी-मीठी बातें किए जाएगे और मीठी-मीठी निगाहो से देखते जाएगे। इनका भाषण सुनकर श्रोताओ को गुमान होने लगता है कि वो कोई भाषण नही सुन रहे हैं, खमीरा गाव जबान चाट रहे हैं, ये 'खमीरी अध्यक्ष' हैं।

फिर एक ऐसे भी अध्यक्ष होते हैं जिन्हें आप कोई भी विषय दे दीजिए वो अपने भाषण का सिलसिला हज़रत आदम से शुरू करेंगे। ये भूतकाल पर ज़्यादा ज़ोर देंगे और वर्तमान को बदनाम करेंगे और भविष्य की ओर कोई भी संकेत नहीं करेंगे, क्योंकि इनकी अपनी आयु नव्वे के ऊपर है। ये बीच बीच में शेर पढ़ते जायेंगे और इतिहास, धर्म और दर्शन के लंबे-चौड़े उदाहरण देकर श्रोताओं का नातका बंद कर देंगे।

इनका भाषण सुन लेने के बाद आदमी दो महीने तक किसी कान्फ्रेन्स में नहीं जा सकता। ये 'धर्मधारी अध्यक्ष' होते हैं।

फिर वो अध्यक्ष भी होते हैं जो मेरी तरह ज़बान से एक शब्द भी नहीं बोल पाते और सिर्फ कागज़ पर लिखकर बोलने की शक्ति रखते हैं। फिर एक वो अध्यक्ष होते हैं जो इस कदर गलतगवी और गायब दिमाग होते हैं कि उनकी अध्यक्षता खत्म होते ही सहसा 'धत् तेरी' कहने को जी चाहता है।

अध्यक्षों और सभापतियों की और भी किस्में होंगी, पर इस समय वो सारे ज़हन के बाहर हैं। यहां मैंने गिनी-चुनी किस्मों का ज़िक्र इसलिए किया कि आपको मालूम हो जाय कि मैं कहां फिट बैठता हूं। बहरहाल अध्यक्ष होने के नाते से मेरा पहला कर्तव्य यह है कि मैं अध्यक्षता के व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से भी आपको जानकारी कराता चलूं और साथ-साथ आपका शुक्रिया भी अदा करता चला जाऊं। अब कुछ अनावश्यक बातें भी हो जाएं यानी असली विषय से हटकर। एक अध्यक्ष और उसके श्रोताओं में यही एक मूल वस्तु सांझी होती है कि दोनों असली विषय से बहुत घबराते हैं। और जब तक इधर-उधर की बातें होती रहें दोनों बहुत खुश रहते हैं। इसलिए आइए अब असल विषय के ।रे में भी थोड़ी गुफ्तगू कर लें। वरना कान्फ्रेन्स के मंत्रीमंडल को जान-कर आलोचना करने का मौका मिलेगा।

साहित्य के बहुत-से गंभीर रंग के आलोचक, व्यंग्य और हास्यरस दूसरे दर्जे का साहित्य समझते हैं।

हालांकि विचार किया जाए तो आदमी अगर तमाम दूसरे जानवरों से सर्वोत्तम है तो अपने हंसने की वजह से ही, अन्यथा प्रेम तो जानवर भी करते हैं। घर बनाना 'बया' से अधिक किसीको नहीं आता। नाचता मोर भी है। मकड़ी से महीन कपड़ा कोई नहीं बुनता, बुलबुल से बेहतर कोई नहीं गाता। चींटी से ज़्यादा कोई अक्लमंद नहीं, शेर से ज़्यादा कोई दिलेर नहीं मगर हंसता सिर्फ इन्सान है, इसीलिए वो सर्वोपरि है। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि यहां पर जो दर्शन अधिकतर लागू है उसमें यह दुनिया छोड़ देने का ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। इसलिए यहां हंसना बुरा समझा जाता है। यहां के पुरुष हर समय गंभीरता का आवरण ओढ़े रहते हैं। स्त्रियां घूंघट काढ़े रहती हैं। बच्चों को हंसने पर पिटाई होती है और हास्यरस के साहित्य को आम तौर से असभ्य साहित्य समझ लिया जाता है। धार्मिक ग्रंथ हंसना नहीं सिखाते। धर्म, समाज और चरित्र के सांचों में हंसी का गुज़र नहीं। जहां तक श्रोताओं का ताल्लुक है, उनकी हर कोशिश यह होती है कि कोई व्यक्ति इस दुनिया में तो क्या अगली दुनिया में भी न हंस सके इसीलिए हमारी दुनिया में हंसना मुश्किल है और हंसाना उससे भी अधिक मुश्किल। इस कदर मुश्किल कि कभी-कभी इसमें खून थूकना पड़ता है, तब कहीं जाकर एक लतीफा-चुटकुला बनता है। इसीलिए आप देखेंगे कि जो उच्च श्रेणी के हास्यकार होते हैं वो आम तौर पर मन के उजले मगर तन के दुबले होते हैं।

हंसने और हंसाने में एक भेद और भी है। हंसाने से आदमी दुबला होता है और हंसने से मोटा होता है।

हंसना स्वास्थ्य और शक्ति का बेहतरीन टॉनिक है। मैं हंसने को इसलिए भी महत्त्वपूर्ण समझता हूं कि हमारी कौम पिछले दो हज़ार वर्षों से हंसी ही नहीं। इसलिए अगर हम एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें हंसना सीखना ही पड़ेगा। अभी तो हम रोने वाली कौम हैं। कोई भी समस्या आन पड़े तो हमें भिखारियों की तरह रोने की सूझती है। देश में अनाज की कमी है—आओ रोएं—मंहगाई बढ़

[illegible] है —[illegible] । [illegible] नहीं है, समस्याओं का सामना [illegible] है, [illegible] जाता है। [illegible] हैं। [illegible] देता है, [illegible] (इसकी [illegible]) [illegible] कर लेते हैं।

मगर इन्सान हंसता क्यों है? जब तक हम इस सवाल को न साफ करें मामला आगे नहीं बढ़ेगा—क्योंकि इन्सान की हंसी की एक वजह नहीं है, बहुत-सी वजहें हैं। कुछ नई, कुछ पुरानी और पुरानी वजहों में सबसे पुरानी यह है कि इन्सान आम तौर पर दूसरों की तकलीफ पर हंसता है। इसका एक उदाहरण केले का छिलका है जिसपर फिसल कर गिरने वाले आदमी पर आज भी सब लोग हंसते हैं।

दूसरे उदाहरण भी हैं, लोग काल से मरते हैं और अनाज छुपाने वाले उनपर हंसते हैं, घरों में रहने वाले फुटपाथ वालों पर हंसते हैं और जिनके पास मोटर है वो पैदल चलने वालों पर हंसते हैं।

यह नहीं कि गरीब लोग नहीं हंसते। मगर गरीब और अमीर की हंसी में यह भेद है कि जब गरीब हंसता है तो गोया अपनी लंगोटी में फाग खेलता है। जब अमीर हंसता है तो दूसरे की लंगोटी उतारकर हंसता है। और मानव जाति का सबसे बड़ा दुखान्त यह है कि उसकी हंसी भी दो श्रेणियों में बंट गई है।

फिर मनुष्य दूसरों की हास्यप्रद बातों पर भी हंसता है। ऐसी बातें जो आम रीति-रिवाज से अलग होती हैं और मानव की सीमित जीवन के परम्पराओं से दूर। इसी तरह से कई लोग उनका मजाक उडाते हैं जो मानवीय जीवन में प्रगति चाहते हैं। फिर कुछ लोग दूसरों की छोटी-छोटी त्रुटियों पर हंसते हैं। दूसरों की त्रुटियों पर हंसना कोई बुरी बात नहीं है पर अपनी त्रुटियों पर भी हंसना चाहिए। इससे आत्मा का विवेचन होता है और दूसरों को क्षमा कर देने की क्षमता भी प्राप्त होती है। पर अपने यहां यह परम्परा प्रचलित है कि हम दूसरों की त्रुटियों पर हंसते हैं,

अपनी त्रुटियों पर पर्दा डालते हैं।

मगर इन्सान ने आगे बढ़ना भी सीख लिया है। इसलिए वो केवल Humour for humour's sake (हंसने के लिए हंसना) का कायल नहीं रहा गोया वो भी अच्छी चीज़ है पर अब मानव उससे आगे निकल आया है। अब वो केवल केले के छिलके पर से फिसलने पर नहीं हंसता। अब उसकी हंसी की सीमा में वो छिलके भी हैं—समाज के, राजनीति के और अधिक दरिद्रता के जिनपर वो खुद फिसल रहा है।

अब वो समाज के अन्तर्विरोध पर हंसता है, समाज के हालात के, मिजाज के, व्यक्तित्व और उसके चरित्र के अन्तर्विरोध पर हंसता है। इसी आन्तरिक विरोध की गहरी सूझ-बूझ में वो व्यंग्य पैदा होता है जो हास्यरस की सबसे नवीनतम विशेषता है और सिर्फ हमारे साहित्य में ही नहीं बल्कि दूसरी भाषाओं के साहित्य में भी लोकप्रिय है। व्यंग्य ही वो तेज़ नश्तर है जिससे लेखक और कवि समाज के नासूर के गन्दे फोड़े खोलता है और उसे स्वास्थ्य और शक्ति और प्रगति की ओर बढ़ाने की चेष्टा करता है।

फिर हंसी की एक और भी वजह होती है, यानी बिला वजह हंसना, जैसे स्त्रियां हंसती हैं और बच्चे हंसते हैं। पर आजकल यह हंसी बहुत कम होती जा रही है और इस दुनिया का एक दुखांत यह भी है कि हमारी स्त्रियों और बच्चों ने बिना वजह हंसना छोड़ दिया। स्त्रियां शायद इस-लिए नहीं हंसती कि यह दुनिया उनकी सृजनात्मकता की तरह सुन्दर नहीं रही और बच्चे इसलिए नहीं हंसते कि उन्हें अब गेहूं का भाव मालूम हो चुका है। कभी-कभी हंसी एक तलवार होती है और कभी-कभी एक सौत, जिसके अन्दर आंसू की बूंद मोती की तरह छिपी रहती है।

और मैं सोचता हूं कि क्या कभी वो युग भी आएगा जब इन्सान किसी दूसरे इन्सान की तकलीफ पर नहीं हंसेगा, दूसरों का मान हथिया-कर नहीं हंसेगा, दूसरों पर अत्याचार करके नहीं हंसेगा—

जब हालात का यह अन्तर्विरोध मिट जाएगा और इन्सान और

# चिनारों का मौसम

खिजां के मौसम में जब चिनारों के पत्ते लाल होने लगते हैं तो ऐसा लगता है कि पेड़ों ने अपनी उंगलियों में मेहंदी लगाई है।

फिर जब शरद ऋतु की शीतल-सुखद हवा चलने लगती है तो पेड़ों की डालियां लचकती और डोलती हैं। लाल-लाल पत्ते परेशान होकर हवा में झूमते हैं और ऐसा लगता है जैसे हवा के ज़ोर से किसीने घबराकर अपने मेहंदी-भरे हाथ अपनी आंखों पर रख लिए हों। ये लाल-लाल पत्ते प्रेम-पत्र हैं जो चिनारों ने कश्मीर की धरती को भेजे हैं। इन प्रेम-पत्रों की भी एक कहानी है।

धरती से चिनार का एक गिरा हुआ पत्ता उठाइए। आज से एक हज़ार बरस पहले यह लाल पत्ता, जिससे कश्मीर की ख़िजां की बहार है, यहां नहीं होता था। क्योंकि आज से एक हज़ार बरस पहले कश्मीर में चिनार नहीं होते थे।

ख़िजां कश्मीर में आती थी। यूं ही रुत बदलती थी। पत्ते झड़ने लगते थे। फल पकने लगते थे। और दूर कहीं-कहीं पहाड़ की चोटियों पर बर्फ की चांदी बरसने लगती थी। झील के गहरे नीले पानी में मांझी चप्पू चलाते हुए गीत गाते थे। सब कुछ इसी तरह होता था। लेकिन ये ऊंचे, लम्बे, लाल पत्तों वाले चिनार यहां मौजूद न थे, जिन्हें किसी घाटी पर खड़े देखकर आज भी यों महसूस होता है, जैसे कोई पुराने ज़माने का योगी ध्यान के अग्नि की ज्वाला लिए प्रकृति की उपासना कर रहा है।

कश्मीर का चिनार अफगानिस्तान का बेटा है और बाबर के साथ

फरगना की घाटी से आया है। जैसे अमरीका से आलू, तम्बाकू और मक्ई आयी है, जैसे आस्ट्रेलिया से यूकलिप्टस आया है, यूरोप से ग्लेडियोला और कारनेशन के फूल आए हैं।

यों ही होता है। इस दुनिया मे चीजें इधर से उधर जाती हैं। जैसे औरत मायके से ससुराल जाती हैं। जैसे एक देश की खुशबू हवा के कन्धे पर दूसरे देश को जाती है। जैसे यहा से जावा को रामायण जाती है और वहा से दालचीनी आती है। सुदूर-पूर्व मे महात्मा बुद्ध का सन्देश जाता है और वहा से रेशम आता है। सभ्यता के इसी मेल-जोल से दुनिया बनी, बढ़ी और सवरी है और आगे भी ऐसा होगा। लोग तलवार को भूल जाएंगे और चिनार के पत्तों को याद रखेंगे।

धरती से एक और लाल पत्ता उठाओ।

यह पत्ता हमेशा से लाल नही था, इसकी लाली इसकी मेहनत का आखिरी फल है। कभी यह पत्ता अपनी डाली की आख मे सोता था, जैसे किसी कुंवारी की आंख मे सुन्दर सपने सोते हैं। सारी सर्दियों मे इस डाली ने हवा के झक्कड खाए, बरफ के तूफान सहे और इन पत्तो को अपने सीने में यू रखा जैसे मा अपनी कोख मे बच्चे को हिफाजत से रखती है।

फिर बहार आई और जिन्दगी जागी। नीले आसमान मे सूरज दिखाई दिया। डालियों ने अंगड़ाई ली और नन्हे-नन्हे पत्तो के गुच्छे हुमककर बाहर निकल आए और अपनी नन्ही-नन्ही कलियों जैसी आखें खोलकर हैरत से बाहर की दुनिया का तमाशा देखने लगे। उन्होंने सर उठाकर सूरज की तरफ देखा और इस तरह सूरज की किरनो को चूमने लगे जैसे नन्हे-नन्हे बच्चे मा की छाती से लगकर दूध पीते हैं।

हिंदू देवमाला मे, और बहुत-से दूसरे देशो की देवमाला मे, सूरज एक बाप है, लेकिन पत्तों के लिए वह एक मां भी है। इसीलिए सर्दियों में जब कश्मीर का सूरज बादलों की ओट में छिप जाता है, पत्ते झड जाते हैं, क्योंकि सिर्फ मा अपने बच्चों की रक्षा कर सकती है।

शुरू बहार के दिनो में चिनार के पत्तो का रंग लाल नहीं होता,

डालियां। कंजूस आदमियों ही में नहीं पेड़ों में भी पाए जाते हैं।

लेकिन अच्छे इंसान और अच्छे पेड़ वही होते हैं जो धीरे-धीरे अपना सब कुछ दूसरों को दे देते हैं, जैसे मां अपनी जवानी बच्चों को देती है, जैसे पत्ते अपना प्यार फलों को देते हैं, जैसे कश्मीर अपना हुस्न सबको दिखाता है। इसी वजह से पानी चलता है, फूलों में रंग आता है और एक इंसान दूसरे इंसान को देखकर प्यार करता है। अगर दुनिया की सारी मिठास आलू की जड़ों की तरह ज़मीन के नीचे दब जाती तो यह दुनिया कितनी बदसूरत होती!

बहार लड़कपन है तो गर्मी जवानी है। और जवानी की गर्मी तो मशहूर है। गर्मी में पत्ते फैलकर हथेलियां बन जाते हैं और चिनार के पत्तों को देखकर बिलकुल ऐसा लगता है जैसे किसी आदमी की पांचों उंगलियां खुली हुई हों। मुझे अपने बचपन के बहुत-से चिनार याद हैं—बहुत ऊंचे और पुराने, बुलंद और बाला चिनार, जिनकी शाखें ऊपर आसमान को उठी हुई थीं और पत्तों की हथेलियां यूं खुली हुई, जैसे इंसान आसमान से अपनी तकदीर पूछ रहा हो।

जब कभी मैं अखबार में आनेवाली जंग का खतरा देखता हूं तो मुझे कश्मीर के चिनार बहुत याद आते हैं। दूर-दराज़ से आए हुए पौधे, चंगेज़ और तैमूरलंग की सरज़मीन के फरज़ंद, जिन्होंने कश्मीर की घाटी में पनाह ली है, जो यहां के मिट्टी-पानी में पलकर जवान हुए हैं, बड़े हैं और ऊंचे हुए हैं। उनके मेंहदी-भरे हाथ मुहब्बत के लिए बनाए गए हैं, जंग के लिए नहीं।

एक और लाल पत्ता उठाओ।

झील डल के किनारे शालीमार बाग के सबसे ऊंचे और ऊपर के हिस्से में चिनारों के बड़े-बड़े झुंड खड़े हैं। ये बहुत पुराने और मज़बूत पेड़ हैं। सुना है, इन्हें जहांगीर और नूरजहां ने लगाया था। अगर ये उनके बेटे नहीं तो उनके बेटों के बेटे ज़रूर हैं।

कभी इन सायादार दरख्तों के नीचे, ज़रूर मुगल शहज़ादियों ने

हल्का ऊदा भी नहीं होता, जैसे आम के पत्तों का रंग होता है। वह हल्का-
हल्का सब्ज़ होता है, जैसे कच्ची सुबह का रंग होता है, जैसे किसी नयी
उम्मीद का रंग होता है जिसने आदमी के सीने में पहली बार आंख खोली
हो। कश्मीर की बहार के कई रंग हैं—सेब के गुलाबी फूलों की डालियां
झुकती हुई, बादाम के सफ़ेद फूलों की छड़ियां लचकती हुई, आलूचे के ऊदे
मरकज वाले नाजुक-नाजुक फूलों की शाखें। कश्मीर की बहार फूलों की
बहार होती है, पत्तों की बहार नहीं होती। इन्सान और उसकी सभ्यता
की तरह प्रकृति सबको बारी-बारी मौका देती है। जब फूल झड़ जाते हैं
तो फल उनकी जगह लेते हैं। जब एक सभ्यता एक जगह अपनी बहार
दिखा चुकती है तो दूसरी उस जगह पैदा होती है। पुरानी सभ्यता का
मातम ज़रूर करो, क्योंकि फूल बड़े ख़ूबसूरत होते हैं, लेकिन ज़िन्दगी
सिर्फ मातम ही तो नहीं है, वह नयी सभ्यता का जन्म भी है। फलों को
देखो, जिन्हें फूलों ने पैदा किया है। ज़िन्दगी सिर्फ मोहनजोदड़ो नहीं, वह
अशोक की लाट भी है। ज़िन्दगी सिर्फ मार्तण्ड का मन्दिर नहीं वह शाली-
मार बाग भी है। ज्यूं-ज्यूं बहार गुज़रती जाती है, पत्ते फैलकर बड़े
और जवान होते जाते है। कच्ची सब्ज़ी-मायल रंग गहरे सब्ज़ रंग में
तबदील होने लगता है। पत्तों के गुच्छे के गुच्छे फलों के गिर्द यूं जमा हो
जाते हैं जैसे बहुत-सी बहनें अपने भाई के गिर्द जमा हो जाती हैं। एक
पत्ते का फल से भी वही रिश्ता है जो बहन का भाई से होता है। मसल
मशहूर है कि लड़कियां लड़कों से जल्दी जवान होती हैं क्योंकि लड़की
पत्ता है और फल बेटा है।

यह भी होता है कि डाली अपनी जवानी और पत्ते अपना रस
फलों को दे देते हैं वरना वह भी मीठे होते। प्रकृति में ऐसा भी होता
कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो पत्तों और फलों को बहुत कम देते हैं और
सब कुछ ज़मीन के नीचे लाकर अपनी जड़ों में रखते जाते हैं, जैसे
न। कुछ डालियां ऐसी भी होती हैं जो अपना रस फलों को नहीं देतीं
। ए उनसे दूध निकलता है, जैसे दक्षिणी अमरीका के 'मिल्क ट्री' की

डालियां। कंजूस आदमियों ही में नहीं पेड़ों में भी पाए जाते हैं।

लेकिन अच्छे इंसान और अच्छे पेड़ वही होते हैं जो धीरे-धीरे अपना सब कुछ दूसरों को दे देते हैं, जैसे मां अपनी जवानी बच्चों को देती है, जैसे पत्ते अपना प्यार फलों को देते हैं, जैसे कश्मीर अपना हुस्न सबको दिखाता है। इसी वजह से पानी चलता है, फूलों में रंग आता है और एक इंसान दूसरे इंसान को देखकर प्यार करता है। अगर दुनिया की सारी मिठास आलू की जड़ों की तरह जमीन के नीचे दब जाती तो यह दुनिया कितनी बदसूरत होती!

बहार लड़कपन है तो गर्मी जवानी है। और जवानी की गर्मी तो मशहूर है। गर्मी में पत्ते फैलकर हथेलियां बन जाते हैं और चिनार के पत्तों को देखकर बिल्कुल ऐसा लगता है जैसे किसी आदमी की पांचों उंगलियां खुली हुई हों। मुझे अपने बचपन के बहुत-से चिनार याद हैं—बहुत ऊंचे और पुराने, बुलंद और बाला चिनार, जिनकी शाखें ऊपर आसमान को उठी हुई थीं और पत्तों की हथेलियां यूं खुली हुईं, जैसे इंसान आसमान में अपनी तकदीर पूछ रहा हो।

जब कभी मैं अखबार में आनेवाली जंग का खतरा देखता हूं तो मुझे कश्मीर के चिनार बहुत याद आते हैं। दूर-दराज से आए हुए पौधे, चंगेज और तैमूरलंग की सरजमीन के फरजंद, जिन्होंने कश्मीर की घाटी में पनाह ली है, जो यहां के मिट्टी-पानी में पलकर जवान हुए हैं, बढ़े हैं और ऊंचे हुए हैं। उनके मेंहदी-भरे हाथ मुहब्बत के लिए बनाए गए हैं, जंग के लिए नहीं।

एक और लाल पत्ता उठाओ।

भील डल के किनारे शालीमार बाग के सबसे ऊंचे और ऊपर के किते में चिनारों के बड़े-बड़े झुंड खड़े हैं। ये बहुत पुराने और मजबूत पेड़ हैं। सुना है, इन्हें जहांगीर और नूरजहां ने लगाया था। अगर ये उनके बेटे नहीं तो उनके बेटों के बेटे जरूर हैं।

कभी इन सायादार दरख्तों के नीचे, जरूर मुगल शहजादियों ने

आराम किया था। तलवार सजाए बांके राजपूती सिपाही ही इनके नीचे गश्त करते थे, लेकिन दुनिया की खूबसूरती को दुनिया का बड़े से बड़ा राजा भी अपने महल के बाग में कैद नहीं कर सकता। आज चिनार के दरख्त निशात और शालीमार बाग छोड़कर कश्मीर की घाटियों और वादियों में जगह-जगह फैल गए हैं और गांव-गांव उनके महंदी-भरे हाथ ढोलक बजाते हैं। उनके सायादार घेरों के अन्दर भेड़ें होती हैं, चरवाहे बांसुरी बजाते हैं, औरतें तकली पर ऊन कातती हैं और निडर वहशी आंखों से अपने चाहनेवालों को मुहब्बत का पैगाम देती हैं। सिर्फ चिनार ही नहीं, आज दुनिया में जहां-जहां भी कोई एक पेड़ खड़ा है, अपनी पत्तों-भरी डालियां आसमान की तरफ उठाए जिन्दगी के लिए दुआ करता नज़र आता है।

गर्मी जाने लगी। फलों का रस बढ़ता गया और मीठा होता गया। पहले यह रस कम था और कड़ुवा और बखटा था, फिर खट्टा हुआ फिर मीठा हुआ। पहले फलों की जिल्द पत्तों की तरह सब्ज़ थी, फिर हल्की धानी हुई, फिर जर्द हुई, फिर सुनहरी हुई, फिर लाल होने लगी। जब सेब के गाल बच्चों की तरह लाल हो जाएं और शहतूत पर भंवरे मंड-लाएं और अनार किसी गुंचादहन की तरह खिल जाए तो समझो कश्मीर में खिजां का मौसम आ गया।

कश्मीर में खिजां का मौसम मानो ज़िन्दगी में सम्पूर्णता का मौसम है। इसके आगे सर्दी का मौसम है, जब हर चीज़ बर्फ की गोद में सो जाएगी, लेकिन यह तो हर चीज़ का अंजाम है, इसलिए इसका क्या गम ? गम तो उसी चीज़ का होता है जो कभी न आनेवाली हो।

कश्मीर में खिजां का मौसम मेरे ख्याल में सबसे हसीन मौसम होता है। फूल अपने शबाब पर होते हैं, फल पक जाते हैं, फसल कट जाती है, हाउस बोट धोए-धाए साफ और उजले नज़र आते हैं। झेलम पर सुर्ख-सुर्ख [illegible]दोंवाले हल्के-फुल्के शिकारे तेज़गाम नज़र आते हैं। मांझियों के मज़बूत [illegible]थों में चप्पू हैं, औरतों के गले में गीत हैं; आसमान रोशन है और कश्मीर

ने चप्पे-चप्पे पर हिन्दुस्तान और दूर और नजदीक के मुल्कों से आए हुए सैंकड़ों-हजारों यात्री घूम रहे हैं और वादिए-लिदर से लूलाव तक और गुलमर्ग से पहलगाम तक और डल से वुल्लर तक फैल गए हैं।

इसी मौसम में खिजा में हुस्न अपनी पूर्णता को पहुंचता है क्योंकि प्रकृति में अजब सतुलन है। उसने किसी जिन्दा चीज का हक नहीं मारा। अगर उसने चिनार को सेब और अनार और अंगूर ऐसे मीठे फल नहीं दिए तो उसने चिनार को ऐसे सुर्ख-सुर्ख लाल पत्ते दिए हैं जो उसने किसी दूसरे पेड़ को नहीं दिए। ये पत्ते, जो अपनी चमक-दमक में सूरज की किरनों और सोने की अशर्फियों को भी शरमाते हैं, खिजां के मौसम में अपनी तकमील (पूर्णता) को पहुंचते हैं और जो यह चाहता है कि जिस तरह मौसमे-खिजां में चिनार के पत्ते अपनी तकमील को पहुंचे है उसी तरह इस दुनिया में हर जिन्दा चीज अपने मौसम में अपनी तकमील को पहुंचे। हवा तेज चल रही है। चिनारों के पत्ते झड़ रहे हैं। इन लाल-लाल पत्तों ने जमीन पर एक ऐसा आरामदेह गलीचा बिछा दिया है जो सोने की किरनों से बना हुआ मालूम होता है। आओ, इसपर लेट जाएं। तुम अपनी शाल उतार दो, मैं अपना कोट उतार दूं, तुम अपना हाथ मुझे दे दो और मैं तुम्हारी उंगलियों से खेलूं और दोनों यूं साथ-साथ लेटे हुए कहीं लोगों की नजरों से दूर ऊपर नीले आसमान को तकें जिसके नीचे चिनार के दरख्त यूं शोला-रू खड़े हैं जैसे उनका हर पत्ता एक फुलझड़ी है और हर पेड़ एक दिवाली है। आओ, घड़ी-दो घड़ी के लिए उन सुर्ख पत्तों के बिछौने पर आराम कर लें। अपनी इब्तिदा की याद करें और अपनी मुहब्बत के अंजाम से गुजर जाएं।

# असली कश्मीर बनाम फिल्मी कश्मीर

पहले तो कश्मीर था ही नहीं इस कहानी में, लेकिन जब फिल्म आधी बन गई और किसी डिस्ट्रीब्यूटर ने नहीं उठाई, तो प्रोड्यूसर को अन्देशा पैदा हुआ। कुछ दिन तो वह शूटिंग के दौरान बड़ी परेशानी की हालत में अपनी पीठ खुजाता रहा, लेकिन जब उससे भी कोई हालत न सुधरी, तो वह दो-चार डिस्ट्रीब्यूटरों के पास गया और वहां से जो लौटा, तो गरज कर अपने डाइरेक्टर से बोला, "इस कहानी में कश्मीर डालो।"

"कैसे डालें ?" डाइरेक्टर अपना सर खुजाते हुए बोला। प्रोड्यूसर और डाइरेक्टर को एक ही बीमारी थी। प्रोड्यूसर पीठ खुजाता था, तो डाइरेक्टर सर खुजाता था। अगर कहीं गलती से प्रोड्यूसर सर खुजाने लगता था, तो डाइरेक्टर तुरन्त अपनी पीठ खुजाने लगता। 'आटो सजेशन' का बहुत उम्दा जोड़ा था यह !

"कैसे भी डालो, कुछ हेरा-फेरी करो," प्रोड्यूसर नाराज़ होकर बोला।

"जगह किधर है ?" डाइरेक्टर ने परेशान होके पूछा—

"अभी हमने मिस गैलन का डान्स डाला है इसमें, फिर शेर-ए-मलाया सरदार अत्तरसिंह और मास्टर डिंगडांग टाइगर आफ टिम्बकटू का फ्री-स्टाइल कुश्ती डाला है इसमें, फिर रूसी सर्कस, जो इधर आया था पिछले ... वह सारे का सारा हमने फिल्म में घुसा दिया है, अब फिल्म में ...धर से डालेगा, जगह ही नहीं है···सेठ···इतना जुल्म मत करो ... पर !"

"नहीं, हमको तो कश्मीर मंगता ही मंगता है इस फिलिम में !" प्रोड्यूसर ने फंसलाकुन लहजे में कहा, "तुम्हारा रेटर किधर है, जानी बाबू ?"

"वह बाहर बैठा रो रहा है।"

"क्यों ?"

"उसका बाप मर गया है।"

"बाप मर गया है ?...अभी छह महीने पहले तो उसका बाप मरा था, जब हमने उसको ढाई सौ रुपया दिया था, अब फिर उसका बाप मर गया ?"

"मगर अब की कुछ ज्यादा नहीं मरा, अब की वह सिर्फ एक सौ रुपया मांगता है।"

प्रोड्यूसर ने ज़ोर से घंटी बजाई, कठोर स्वर में चपरासी से जानी बाबू को अन्दर बुला लाने को कहा। फिल्म का लेखक जानी बाबू दरवाजा खोलकर अन्दर आया, तो एक हाथ में सर और दूसरे हाथ से पीठ खुजा रहा था।

प्रोड्यूसर ने सौ का पत्ता जेब से निकाला और उसे मेज पर रखते हुए कहा, "जानी बाबू, हम तुमको अब्बी का अब्बी सौ रुपया देता है, मगर हमारा एक शर्त है, हमारे फिलिम में कश्मीर डाल दो।"

जानी बाबू खुश होकर बोला, "तुम बोलो सेठ तो कश्मीर क्या सारा एशिया डाल देगा तुम्हारे फिल्म में।"

"मगर कैसा डालेगा ? डाइरेक्टर अभी तक एतराज़ किए जा रहा था, कहानी तो हीरोइन की है, जो बम्बई में पच्चीस रुपये की खोली में रहती है, ऐसी लड़की कश्मीर कैसे जा सकती है ?"

"क्यों नहीं जा सकती ?" जानी बाबू बोला, "गर्मियों की छुट्टियों में स्कूल की बहुत-सी लड़कियां कश्मीर जा रही है, ऐसे मौके पर स्कूल की हेड मिस्ट्रेस स्कूल टीचर सुधा को यानी हमारी हीरोइन को स्कूल की तरफ से और स्कूल के खर्च पर लड़कियों की निगरानी के लिए कश्मीर भेज

देती है।"

"फाइन।" प्रोड्यूसर ताली बजाकर बोला।

"मगर हीरो ?" डाइरेक्टर ने फिर विरोध किया, "हीरो कश्मीर कैसे जाएगा ?"

जानी बाबू बोला, "हीरो का बाप काश्मीर में है, हीरो का बाप मर जाता है, कश्मीर से टेलीग्राम···"

"क्या तुम आज सबके बाप मारने पर तुले हुए हो ?" डाइरेक्टर ने लेखक से पूछा।

"कुछ और सोचो !" प्रोड्यूसर बोला।

लेखक ने सोच-सोचके कहा, "हीरो को शेख अब्दुल्ला ने बुलाया है।"

डाइरेक्टर मुस्कराने लगा।

प्रोड्यूसर ने गरजकर कहा, "हमको फिलिम में पालिटिक्स नहीं चाहिए।"

"बहुत अच्छा, सेठ !" जानी बाबू सर हिला के बोला, "हम तुमको दूसरा आइडिया देता है, मगर एक सौ रुपया और लेगा।"

"एक लाख का आइडिया हुआ तो एक सौ देगा," प्रोड्यूसर जानी बाबू लेखक के करीब झुककर बोला।

जानी बाबू बोला, "सुना सेठ ! हमारा हीरो बेकार है—है ना ? और हर फिल्म में हीरो बेकार होता है, वह रात को फुटपाथ पर सोता है ना ?"

"बरोबर !" प्रोड्यूसर बोला।

"रात को उसको ठंडी लगती है, वह फुटपाथ से भागकर एक गोडाउन में छिपता है, गोडाउन में भी उसको ठंडी लगती है, वह लकड़ी के एक बक्से में, जिसमें घास पड़ी है, लेट जाता है। एकाएकी गोडाउन में शोर होता है, लोग अन्दर आते हैं। मज़दूर लोग उस लकड़ी के बक्से को कीला ःारकर बन्द कर देते हैं, और उस लकड़ी के बक्से को दूसरे बक्सों के साथ क पर चढ़ाकर एयरपोर्ट पहुंचा देते हैं। एयरपोर्ट से यह सामान हवाई

जहाज में लादा जाता है। हवाई जहाज सीधा कश्मीर जाता है, उधर जब लकड़ी का बक्सा खोला जाता है, तो उसमें से हीरो निकलता है और चीख मारकर कहता है—याहू।"

"ग्रेट!" डाइरेक्टर बोला।

"एकदम धांसू।" प्रोड्यूसर की बाछें खुशी से खिल गई। उसने अपनी जेब से एक सौ रुपये के बजाय अब दो सौ के नोट निकाले और जानी बाबू को देते हुए बोला, "पिछली बार जब तेरा बाप मरा था, तो मैंने तुमको ढाई सौ दिए थे, इस बार तीन सौ दे रहा हूं—ऐसा-ऐसा नवा आइडिया निकाल के लाएगा, तो तेरा बाप रोज भी मरेगा, तो अपने को फिकर नहीं।"

प्रोड्यूसर डाइरेक्टर की तरफ देखकर बोला, "हीरो-हीरोइन की डेट लेकर फौरन कश्मीर चलो।"

मैं फिल्म का केमरामैन था, इसलिए मुझे भी हीरो-हीरोइन, डाइरेक्टर और प्रोड्यूसर के साथ पैलेस होटल में ठहराया गया, जो डल लेक के करीब था। रात का खाना खाने के बाद जब मैंने बेडरूम की खिड़की खोली, तो दूर-दूर तक डल के पानी पर चांदनी थिरकती हुई नज़र आई और डल से परे वादी के किनारों पर सोच में डूबे हुए नीलगूं पहाड़ और गहरी अथाह खामोशी, और चांदनी और दूधिया धुन्ध-सी, जिसमें आदमी वह सब कुछ देख लेता है, जो उसे ज़िन्दगी में नहीं मिलता। बहुत देर तक मैं खिड़की में खड़ा उस दृश्य का आनन्द लेता रहा, फिर कमरे का दरवाजा खोलकर नीचे उतर गया। और चलते-चलते डल के किनारे आ गया।

डल के किनारे एक बूढ़ा आदमी एक पुराने शिकारे को किनारे से बांधे चप्पू हाथ में लिए बैठा था।

उस आदमी के बैठने के अन्दाज में, उसके शरीर में, उसके पूरे व्यक्तित्व में कुछ ऐसी अजीब-सी दशा थी, जिसने मुझे उसकी तरफ आक-

# क्षितिज की खोज

मैं जिस घर मे रहता हूं, उसके एक हिस्से मे चार और आदमी रहते हैं। ये लोग मेरे साथ वाले कमरे मे रहते हैं और कभी-कभी इतने जोर से लड़ते हैं कि उनके झगड़े की आवाज मेरे कमरे में सुनाई दे जाती है। बहुधा उन लोगो के लडाई-झगडे की वजह मे मैं कोई काम नहीं कर सकता। कई बार उनके कमरे से प्लेटों के टूटने, बर्तनो के गिरने के साथ-साथ ऊंची-ऊची गालियो की आवाज आती है और मेरी शान्ति भग कर जाती है। और मैं ठहरा लेखक। और लिखू नहीं, तो जिन्दा कैसे रहू ? सवाल महज रोटी का नही है, रोटी तो दस तरीको से कमाई जा सकती है, लेकिन जिन्दा रहने के लिए लिखना किस कदर जरूरी है और खुद अपने जीवन के बहाव के लिए लिखते चले जाना किस कदर जरूरी है, इसकी आवश्यकता और महत्त्व को कोई लेखक ही जान सकता है।

मगर इस शोर में, जो प्रतिदिन मेरे घर के चारों ओर फैल जाता है, कोई लिखे, तो क्योंकर ? मुझे मालूम नही है, ये चार आदमी कौन हैं और क्या करते हैं। मैं तो जब सुनता हू, इन्हें लडते-झगड़ते ही सुनता हूं। बहुत कमजोर, दब्बू और बुजदिल आदमी भी हू, इसलिए आज तक इन लोगों का सामना करने का साहस नही हुआ। ऐसे झगड़ालू लोगों से कोई बात भी करें तो कैसे ? सम्भव है मार-पीट तक नौबत आ पहुंचे और मैं अकेला और ये चार! यही सोचकर बहुत दिनों तक चुप रहा।

× × ×

संयोग से खिड़की में खिजाब लगाकर बैठे हुए न देखता, तो उसे किसी तरह सात-आठ साल के बच्चे से अधिक आयु का न समझता।

उन्हें देखते-देखते एक अजीब व गरीब सच्चाई का भेद मुझपर खुला। ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उम्र और समय के फर्क के बावजूद उन चारों के चेहरों में एक आश्चर्यजनक समानता मौजूद है। ऐसा लगा जैसे ये चारों भगवान् या तो एक-दूसरे के भाई हैं या एक ही खानदान से ताल्लुक रखते हैं। कुछ यह भी महसूस हुआ कि जैसे मैंने इन सबको कहीं देखा है, हालांकि अब तक कहीं न देखा था।

सबने अस्सी बरस के बुड्ढे से कहा, "क्या ही अच्छा हो बुजुर्गवार, अगर हम सब अपना परिचय एक-दूसरे से करा दें।"

"मेरा नाम कृशन चन्दर है।" मैंने कहा।

वह बोला, "मेरा नाम कृ है।"

"कृ ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"हां 'कृ'," वह बुड्ढा बोला, "हालांकि मैंने आज तक कभी कुछ करके नहीं दिया।"

"इसी वजह से तुम्हारी आंखें आज तक जवान हैं।" वह पैंतीस बरस का आदमी बोला, जिसकी आंखें बड़ी ज़ख्मी और पुरानी थीं, फिर वह मेरी तरफ मुड़कर बोला, "मेरा नाम शन है।"

"मैं चन हूं।" वह बच्चा खिलखिलाके हंस पड़ा। मेरे तो रोंगटे खड़े हो गए, इतनी छोटी-सी उम्र के बच्चे की इतनी बुड्ढी हंसी मैंने आज तक नहीं सुनी थी।

"मैं दर हूं," वह शायराना निगाहों वाला नौजवान बोला, "तुम्हारा दरवाज़ा मैंने ही खोला था, सालगिरह मुबारिक हो।"

उन चारों ने मुस्कराकर मुझसे हाथ मिलाए, फिर चन ने कहा, "सच-सच बताओ, तुमने हमें आज निमन्त्रित क्यों किया है? क्या सचमुच [illegible]र ? या यह पूछने के लिए कि हम आपस में लड़ते

"दूसरी बात ज्यादा सच है।" मैंने स्वीकार किया, "तुम लोग लड़ते रहते हो और तुम्हारी हर लड़ाई की आवाज़ मेरे कान में गूंजती रहती है और मैं काम नहीं कर सकता। यह बताओ तुम लड़ते क्यों हो ?"

बुड्ढा क्ष बोला, "हम शुरू से चलेंगे, यानी उस दिन से जिस दिन से हमें ख्याल आया कि हम चल रहे हैं और हमने देखा कि हम चार भाई हैं—क्ष और ज्ञन और चन और दर···और हम एक ही रास्ते पर चल रहे हैं अजनबियों की तरह, तो सोचा, अजनबियों की तरह अलग-अलग और अपने-आपमें रास्ता काट देने से यह कहीं बेहतर है कि एक-दूसरे से बातचीत करते चलें। लफ्ज़ 'बेहतर' पर तुमने गौर किया ? 'बेहतर' कल्पना किसी कमतर के बिना सम्भव नहीं है, यानी दुनिया में किसी एक चीज़ की कल्पना किसी दूसरी चीज़ की कल्पना के बिना नहीं की जा सकती; न अच्छाई की, न बुराई की, न सुन्दरता की, न कला की ! इसीतरह रास्ते की कल्पना भी साथी के बिना नहीं की जा सकती, यानी जहां कोई साथी नहीं है, वहां कोई रास्ता भी नहीं है।"

"और जहां साथी होंगे वहां झगड़ा भी होगा।" ज्ञन बोला। बुड्ढे की नौजवान आंखें मुस्कराने लगीं।

मैंने कहा, "मुसीबत यह है कि तुम लोग हर रोज़ झगड़ते हो और हर वक्त झगड़ते रहते हो। इससे क्या यह बेहतर न होगा कि तुम लोग एक-दूसरे से अलग हो जाओ ?"

"अलग नहीं हो सकते, हमें एक ही मंजिल को जाना है।" दर बोला।

"वह मंजिल कौन-सी है ?" मैंने पूछा।

"यही तो मालूम नहीं !" बच्चा खिलखिलाकर हंसने लगा।

क्ष ने चन को डांटा, फिर मेरी तरफ मुड़कर बोला, "मंज़िल निश्चय करने से पहले यह मालूम करना ज़रूरी है कि हम किधर से आए हैं ? हमारी शुरुआत कौन-सी थी।"

"जब हम पैदा हुए थे।" चन बोला।

आखिरकार इस काम से [illegible] मैंने [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] किसी [illegible] देने की चाहने लगा, तो मैंने एक तरकीब [illegible]। मैंने चारों मालिकों के नाम पर उन चारों पार्टियों को निमन्त्रण-पत्र भेजकर अपने कमरे में आठ बजे शाम को आने की दावत दी। मेरा ख्याल था कि कोई नहीं आएगा, [illegible] मालिकों का [illegible] लिख भेजेंगे। मगर मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, कि इन लोगों ने मेरे चारों निमन्त्रण-पत्रों का अलग-अलग भाव में लिखकर उत्तर दिया और शाम के आठ बजे मेरे कमरे में आने की अभिलाषा प्रकट की।

इस रोज मैंने अपने कमरे की सफाई और सजावट का विशेष आयोजन किया। चार कुर्सियां करीने से रखीं, बीच में एक चौकोर मेज, जिसे मैंने उम्दा किस्म की मिठाइयों और फलों से भर दिया था, ओरेंज स्क्वैश, लेमनजूस, व्हिस्की, बियर और भांग तो पीने के लिए और खाने के लिए रसगुल्ले, गुलाबजामुन, दालमोठ, समोसे, कबाब, चटनी, अनार। सिगरेट, माचिस, ठंडा पानी, पेट्रो, पान किमाम के साथ-साथ एक स्टाम्प पेपर का भी इन्तजाम किया, ताकि अगर उन लोगों में कोई समझौता हो जाए, तो उसपर उनके हस्ताक्षर करा लिए जाएं।

हर तरह के इन्तजाम से फारिग होकर मैंने घड़ी देखी, सवा छह बज चुके थे, उन लोगों के आने में सिर्फ पन्द्रह मिनट बाकी थे। मैंने जल्दी-जल्दी अपने कमरे को बन्द किया, बाहर से ताला लगाया और नुक्कड़ के ईरानी होटल से सोडा लाने के लिए चला गया। सोडा लेकर वापस आया, चाबी से ताला खोला, ताला खोलकर दरवाजे को खोला, तो यह देखकर भौचक्का रह गया, कि मेरे कमरे में वे लोग पहले ही से चारों कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। एक साहब मेरा पाइप पी रहे हैं, तो दूसरे मेरे सिगरेट के कश पर कश लिए जा रहे हैं, तीसरे साहब भांग की ठण्डाई का आधा गिलास खाली कर चुके हैं और अब रसगुल्लों पर नजर लगाए हैं, चौथे

साहब बियर में व्हिस्की डालकर पी रहे है और अधखुली आखो से शून्य मे तकते हुए नई अंग्रेजी शायरी की कोई कविता गुनगुना रहे हैं। मैं इन लोगों को देखकर चकित हो गया, कुछ समझ मे न आया, कि ये लोग ताला तोड़े और दरवाजा खोले बगैर मेरे कमरे में कैसे आ गए और आते ही मेजबान का इन्तजार किए बगैर इन्होने दावत उडाना कैसे शुरू कर दिया ? फिर सोचा, भगड़ालू आदमी हैं, इनसे लड़ना गलत होगा। यह सोचकर मैंने दूसरे क्षण ही में अपने चेहरे पर दो इंच के बजाय छह इंच लम्बी मुस्कान पैदा कर ली और उन्हें अपने गरीबखाने पर चरण रखने के लिए शुक्रिया अदा करने लगा।

उन्होंने मेरे शुक्रिया का कोई उत्तर नही दिया, बस खामोशी से खाते-पीते रहे, बीच-बीच में कुछ इस तरह मेरी तरफ देख लेते थे, जैसे कोई कसाई बकरे को देखता है। मेरा दिल कांपने लगा, सोचा, बडी मूर्खता की इन लोगों को बुलाकर…मैं कमरे मे दाखिल होते ही वही दरवाजे के करीब एक स्टूल पर बैठ गया, कि झगड़ा शुरू होते ही फौरन कमरे मे निकलकर भागने मे आसानी हो।

फिर मैं ध्यान से उन चारों आदमियों को देखने लगा। वह जो मेरी इजाजत के बगैर मेरा पाइप पी रहा था, शक्ल व सूरत से कोई पैंतीस वर्ष का दिखाई देता था, उसकी आंखों पर ऐनक थी और हाथों की उंग-लिया बहुत बेचैन थीं। उसके करीब जो आदमी बैठा हुआ भांग की ठण्डाई पी रहा था, वह कोई अस्सी वर्ष का बुड्ढा मालूम होता था। उसके चेहरे पर बेशुमार झुरियां थीं, लेकिन उसकी आखें बड़ी जवान मालूम होती थीं। उसके करीब शायराना शक्ल व सूरत का एक नौजवान बैठा था, शक्ल से उसकी उम्र उन्नीस-बीस बरस होगी। वह सिगरेट पी रहा था। मेरी तरफ एक अजीब-सी व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट से देखता था। लेकिन उन तीनों से अजीब व गरीब वह चौथा आदमी था, जो मेरे दायें तरफ था और व्हिस्की मे बियर मिलाकर पी रहा था। उसका कद बहुत छोटा था, बिल्कुल बौना, बल्कि बच्चा मालूम होता था और अगर मैं उसे बड़े

"दूसरी बात ज्यादा सच है।" मैंने स्वीकार किया, "तुम लोग लडते रहते हो और तुम्हारी हर लड़ाई की आवाज़ मेरे कान मे गूजती रहती है और मैं काम नही कर सकता। यह बताओ तुम लड़ते क्यों हो ?"

बुड्ढा कु बोला, "हम शुरू से चलेंगे, यानी उस दिन मे जिस दिन से हमें ख्याल आया कि हम चल रहे है और हमने देखा कि हम चार भाई है—कु और शन और चन और दर···और हम एक ही रास्ते पर चल रहे हैं अजनबियो की तरह, तो सोचा, अजनबियों की तरह अलग-अलग और अपने-आपमें रास्ता काट देने से यह कही बेहतर है कि एक-दूसरे से बातचीत करते चलें। लफ्ज़ 'बेहतर' पर तुमने गौर किया? 'बेहतर' कल्पना किसी कमतर के बिना सम्भव नहीं है, यानी दुनिया में किसी एक चीज़ की कल्पना किसी दूसरी चीज़ की कल्पना के बिना नही की जा सकती; न अच्छाई की, न बुराई की, न सुन्दरता की, न कला की! इसीतरह रास्ते की कल्पना भी साथी के बिना नही की जा सकती, यानी जहां कोई साथी नहीं है, वहां कोई रास्ता भी नही है।"

"और जहा साथी होंगे वहा झगड़ा भी होगा।" शन बोला। बुड्ढे की नौजवान आखें मुस्कराने लगी।

मैंने कहा, "मुसीबत यह है कि तुम लोग हर रोज झगडते हो और हर वक्त झगडते रहते हो। इससे क्या यह बेहतर न होगा कि तुम लोग एक-दूसरे से अलग हो जाओ ?"

"अलग नही हो सकते, हमें एक ही मंजिल को जाना है।" दर बोला।

"वह मंजिल कौन-सी है ?" मैंने पूछा।

"यही तो मालूम नही!" बच्चा खिलखिलाकर हसने लगा।

कु ने चन को डाटा, फिर मेरी तरफ मुड़कर बोला, "मंज़िल निश्चय करने से पहले यह मालूम करना जरूरी है कि हम किधर से आए हैं ? हमारी शुरुआत कौन-सी थी।"

"जब हम पैदा हुए थे।" चन बोला।

संतोष से व्हिस्की में बियर डालकर पीते हुए न देखता, तो उसे किसी तरह सात-आठ साल के बच्चे से अधिक आयु का न समझता।

उन्हें देखते-देखते एक अजीब व गरीब सच्चाई का भेद मुझपर खुला। ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उम्र और शक्ल के फर्क के बावजूद उन चारों के चेहरों में एक आश्चर्यजनक समरूपता मौजूद है। ऐसा लगा जैसे ये चारों झगड़ालू या तो एक-दूसरे के भाई हैं या एक ही खानदान से ताल्लुक रखते हैं। कुछ यह भी महसूस हुआ कि जैसे मैंने इन सबको कहीं देखा है, हालांकि अब तक कहीं न देखा था।

सबने अस्सी बरस के बुड्ढे से कहा, "क्या ही अच्छा हो बुजुर्गवार, अगर हम सब अपना परिचय एक-दूसरे से करा दें।"

"मेरा नाम कृशन चन्दर है।" मैंने कहा।

वह बोला, "मेरा नाम कृ है।"

"कृ ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"हां 'कृ'," वह बुड्ढा बोला, "हालांकि मैंने आज तक कभी कुछ करके नहीं दिया।"

"इसी वजह से तुम्हारी आंखें आज तक जवान हैं।" वह पैंतीस बरस का आदमी बोला, जिसकी आंखें बड़ी जख्मी और पुरानी थीं, फिर वह मेरी तरफ मुड़कर बोला, "मेरा नाम शन है।"

"मैं चन हूं।" वह बच्चा खिलखिलाके हंस पड़ा। मेरे तो रोंगटे खड़े हो गए, इतनी छोटी-सी उम्र के बच्चे की इतनी बुड्ढी हंसी मैंने आज तक नहीं सुनी थी।

"मैं दर हूं," यह शायराना निगाहों वाला नौजवान बोला, "तुम्हारा दरवाज़ा मैंने ही खोला था, सालगिरह मुबारिक हो।"

उन चारों ने मुस्कराकर मुझसे हाथ मिलाए, फिर चन ने कहा, "सच-सच बताओ, तुमने हमें आज निमन्त्रित क्यों किया है ? क्या सचमुच [illegible]गिरह की खातिर ? या यह पूछने के लिए कि हम आपस में लड़ते [illegible] हैं ?"

"दूसरी बात ज्यादा सच है।" मैंने स्वीकार किया, "तुम लोग लड़ते रहते हो और तुम्हारी हर लड़ाई की आवाज मेरे कान में गूंजती रहती है और मैं काम नहीं कर सकता। यह बताओ तुम लड़ते क्यों हो?"

बुड्ढा क बोला, "हम शुरू से चलेंगे, यानी उस दिन से जिस दिन में हमें ख्याल आया कि हम चल रहे हैं और हमने देखा कि हम चार भाई हैं—क और छन और चन और दर···और हम एक ही रास्ते पर चल रहे हैं अजनबियों की तरह, तो सोचा, अजनबियों की तरह अलग-अलग और अपने-आपमें रास्ता काट देने से यह कहीं बेहतर है कि एक-दूसरे से बातचीत करते चलें। लफ्ज़ 'बेहतर' पर तुमने गौर किया? 'बेहतर' कल्पना किसी कमतर के बिना सम्भव नहीं है, यानी दुनिया में किसी एक चीज की कल्पना किसी दूसरी चीज की कल्पना के बिना नहीं की जा सकती; न अच्छाई की, न बुराई की, न सुन्दरता की, न कला की! इसीतरह रास्ते की कल्पना भी साथी के बिना नहीं की जा सकती, यानी जहां कोई साथी नहीं है, वहां कोई रास्ता भी नहीं है।"

"और जहां साथी होंगे वहां झगड़ा भी होगा।" छन बोला। बुड्ढे की नौजवान आंखें मुस्कराने लगीं।

मैंने कहा, "मुसीबत यह है कि तुम लोग हर रोज झगड़ते हो और हर वक्त झगड़ते रहते हो। इससे क्या यह बेहतर न होगा कि तुम लोग एक-दूसरे से अलग हो जाओ?"

"अलग नहीं हो सकते, हमें एक ही मंजिल को जाना है।" दर बोला।

"वह मंजिल कौन-सी है?" मैंने पूछा।

"यही तो मालूम नहीं!" बच्चा खिलखिलाकर हंसने लगा।

क ने चन को डांटा, फिर मेरी तरफ मुड़कर बोला, "मंजिल निश्चय करने से पहले यह मालूम करना जरूरी है कि हम किधर से आए हैं? हमारी शुरुआत कौन-सी थी।"

"जब हम पैदा हुए थे।" चन बोला।

"जब औरत आयी थी!" शन बोला।

"जब सूरज ने हमारे सर पर हाथ रखा था!" दर ने जवाब दिया।

कु ने कहा, "दर सच के करीब आने की कोशिश कर रहा है और इससे ज्यादा इन्सान कुछ कर भी नहीं सकता, लेकिन कौन-सा सूरज? क्या यह सूरज, जो हर रोज़ हमारे सर पर निकलता है और हमारे पांव में गायब हो जाता है? क्या इस सूरज को हम अपनी शुरुआत समझें? मगर हमारी आकाशगंगा में तो ऐसे-ऐसे हज़ारों सूरज हैं और हमारी आकाशगंगा से भी बड़ी और भी कई आकाशगंगाएं हैं, जिनके सूरज हमारे सूरज से भी बड़े हैं, जहां गैस के इतने बड़े-बड़े भंवर पड़ते हैं और उन भंवरों के आगे क्या है, यानी हमसे पहले और पहले और पहले ···हम कैसे मालूम करें कि हम कहां से शुरू हुए थे···?"

बुड्ढा एकाएक चुप हो गया। उसके माथे की लकीरें बड़ी हो गईं।

शन ने कहा, "बुड्ढा खब्ती हो गया है, भगवान के करीब जाने की कोशिश कर रहा है, नहीं जानता कि आदि और अंत का किसीको कुछ पता नहीं, किसने शाश्वत वैविध्य को जाना है?—वे सब झूठे थे जिन्होंने कहा कि वे सब जानते हैं।" शन ने कु का गिलास उठा लिया और उसकी तरफ देखते हुए बोला, "इस भांग के गिलास में लाखों अमीबा हैं। क्या इस गिलास के अन्दर के पानी में तैरने वाला अमीबा जानता है कि वह पानी में तैर रहा है? शायद यहां तक वह जानता है। लेकिन क्या वह यह भी जानता है कि पानी में भांग घुली हुई है? शायद यह भी जानता है। लेकिन क्या वह यह भी जानता है कि भांग एक गिलास में है? शायद वह यह भी जानता है। लेकिन क्या वह यह भी जानता है कि भांग का एक गिलास एक अस्सी बरस के बुड्ढे आदमी के हाथ में है। वह अस्सी बरस का बुड्ढा एक कमरे में चार आदमियों के संग बैठा है। वह कमरा घर है, वह घर एक शहर में है, वह शहर एक समन्दर के किनारे आबाद है,

वह समन्दर एक नक्षत्र के धरातल पर तैरता है, वह नक्षत्र एक सूरज के गिर्द चक्कर लगाता है···वह सूरज···? यहा तक जानना बहुत मुश्किल है, एक श्रमीवा के लिए···चारो तरफ इतनी ऊची-ऊची दीवारे खिच रही हैं।"

"मगर आकाश तो खुला है और उसके गिर्द कोई दीवार नही है।" बुड्ढे कृ ने दान से अपना गिलास छीन लिया और उसे खिडकी के करीब ले जाके बोला, "सीधी आकाश से सूरज की एक किरण आती है और अमीबा का सीना रोशन कर देती है······यह देखो, यह देखो, सारी दीवारें टूट गयीं।"

बुड्ढे का गिलास खिड़की के कांच के करीब काप रहा था, रोशनदान के काच से और खिड़की के काच मे छनकर आनेवाली रोशनी ने नूर के भंवर पैदा कर दिये थे। गिलास बुड्ढे के हाथ में एक सतरगे काच की तरह चमक रहा था।

"कृ और दान दोनो गलत वहम करते है," व्हिस्की पीनेवाला बच्चा बोला, "हमे कुछ जानने की जरूरत नही है, क्योकि जब पीछे मुडकर देखते हैं, तो मालूम होता है अभी सूरज नही निकला। दूसरे क्षण में जब आगे देखते हैं, तो मालूम होता है शाम हो गई और वह जो निकला न था डूब गया। ऐसे मे किसी सच्चाई को पा लेने से भी क्या फायदा? बस, यही ठीक है, कुछ न जानो, एक बच्चे की तरह रहो, मस्त अपने नशे मे।"

दर बोला, "चन बड़ा अहमक है, जो समझता है नशा व्हिस्की मे है। अरे बेवकूफ, नशा सबसे पहले तो दिल मे उदय होता है, फिर कुछ नशा तो शराब के रंग में होता है, कुछ जाम के रंग में, कुछ दोस्त की निगाह में और फिर जब दिल और दोस्त, रंग और जाम मिलते हैं, तो नशा पैदा होता है, मगर कुछ लोग मूर्ख हैं, जो सिर्फ व्हिस्की में नशा ढूंढते हैं, हालाकि वहां खुमार के सिवा कुछ नहीं मिल सकता।"

"तुम कहना क्या चाहते हो?" मैंने दर को टोक दिया।

दर वोला, "मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे ईसाइयों और मुसलमानों का फलसफा ज़्यादा वेहतर मालूम होता है, यानी आदम अकेला पैदा हुआ और फिर उसकी पसली से उसकी औरत उभरी, यानी औरत के वगैर न आदम मुकम्मिल है, न जन्नत का ख्वाव ! मगर ये दोनों वातें भी इस कदर महत्त्व की नहीं है। ज़्यादा महत्त्व की वात यह है कि जव एक वार औरत आदम की पसली से निकली, तो फिर दोवारा आदम अपनी पसली से किसी औरत को पैदा न कर सका। अव अपनी पैदाइश के लिए आदम औरत का मुहताज है। इसलिए मैं अपने हमसफरों से कहता हूं, आगे चलने से कोई फायदा नहीं, जहां वैठ गए वहीं मंज़िल है। अलाव रोशन करो, रूखे महवूव से अपने दिल का हसरत-कदा जगमगाओ और गालिव का वह शेर पढ़ो :

"ढूंढ़े हैं फिर उसी मुगनिए आतिश नफस को जी
जिसकी सदा हो जल्वये वर्के फना मुझे।"

चन ने पूछा, "समझ में नहीं आया कि औरत नशे से इस कदर नफरत क्यों करती है ? भांग हो कि व्हिस्की हो, चरस हो कि चण्डू, अफीम हो कि मदक, औरत नशे की इस कदर खिलाफ क्यों है ?"

"क्योंकि औरत खुद एक नशा होती है।" शन ने जवाव दिया।

मैंने पूछा, "मगर नशा सिर्फ औरत ही में क्यों ? नशा तो सच में भी होता है और एक वहुत ही खूवसूरत किस्म के झूठ में भी होता है; नशा गम में भी होता है और एक उम्दा किस्म की खुशी में भी होता है। अगर नशे से मुराद कोई भुला देनेवाली परिस्थिति नहीं है, वल्कि कुछ पा लेने का एहसास है, तो नशा सिर्फ औरत की कान की वाली में ही क्यों गेहूं की सरसराती हुई वाली में क्यों नहीं ?"

क : "हम असल वहस से भटकते जा रहे हैं।"

शन : "असल वहस क्या थी ?"

चन : "मंज़िल है कहां तेरी ऐ लालाए सेहराई।"

दर : "यह सव इस वुड्ढे का कसूर है, जो हमारी सड़क का साथी है।

रद्द बुड्ढा है, इसलिए अपनी मंजिल पर जल्द पहुंचना चाहता है। मैं अभी नौजवान हूं, मैं रोशनी से बचता हूं, और गलतियों की छाव मे चलता हूं। मैं फूलों का ताज पहनता हूं और कांटों पर बसेरा करता हूं, मैं सीधी सड़क छोड़ देता हूं और पगडण्डियों मे निकल जाता हू किसी ऐसे अजनबी की तलाश में जिसकी आंखें मेरी ही तरह जाने किसको देखने के लिए तरसती हैं? मैं गुनाह करता हूं और रोता हूं उस दिन के लिए, जिस दिन सब अच्छे हो जायेंगे। फिर खुदा से कौन डरेगा और खुदा के पास भी इन्साफ करने के लिए क्या रह जाएगा?"

चन "मैं अपने साथियों के साथ चला और हमेशा बच्चा ही रहा, लेकिन ये लोग नहीं जानते कि सारी उम्र बच्चा रहना किस कदर मुश्किल काम है। उस अचम्भे, आश्चर्य और भोलेपन को बरकरार रखना किस कदर मुश्किल है, जो सिर्फ चीजों के न जानने से आता है। मेरे साथी हमेशा जानने की कोशिश में लगे रहे और बुड्ढे होते गए।"

शान: "न जानना अच्छा तो लगता है, इससे बचपना भी बरकरार रहता है, मगर न जानने के लिए जिन्दगी की ज्यादा ताकत रद्द करते हैं, हम खुद को आगे बढ़ने की ताकत से···क्यों न मिलें?—जख्म से क्या डरना और जहर से क्या डरना। जहर किसके हिस्से मे नहीं? कभी गौर किया है? कोई सिगरेट पीता है, कोई शराब पीता है, कोई गम पीता है, कोई अपना खून पीता है, हममें से हर शख्स एक छोटा-सा शंकर है और थोड़ा-थोड़ा जहर पीता है। यह न हो तो समन्दर कैसे मथा जाएगा और अमृत कैसे मिलेगा? हालांकि मैं जानता हूं कि जब सारा समन्दर मथ लिया जाएगा उस समय मालूम होगा कि हम जिस अमृत की तलाश मे भटक रहे थे, वह वही जहर था, जिसे शंकर के सिवा हर एक ने पीने से इन्कार कर दिया था।"

बू: "साइन्स ही एक रास्ता है ज्ञान का!"

शान: "कला ही एक रास्ता है रोशनी का!"

चन: "बचपना ही एक रास्ता है स्थायी नशे का।"

दर : "औरत ही एक रास्ता है सृष्टि का।"

कृशन चन्दर : "आओ दोस्तो, आज की सोहबत का आखिरी जाम पियें। आज अपनी जिन्दगी के पचास वर्ष खत्म हुए, दर्द की आधी शताब्दी बीत गई, मगर अभी बहुत चलना है; कुछ देर अपने पांव से, उसके बाद दूसरे के ख्यालों में, किसीकी हसीन यादों से गुज़र कर अपने महकते हुए ज़ख्मों को लेकर अपने काफिल-ए-नावहार को मौत और वक्त से आगे ले जाना है—शून्य से आगे, जहां फरिश्तों और देवताओं के कदम भी नहीं जा सकते, वहां मुझे जाना है और उस आदमी का इन्तजार करना है, जो मुझसे भी आगे जाएगा।"

# एक इण्टरव्यू : कृशन चन्दर से

## (राजेन्द्र अवस्थी द्वारा)

२५ जुलाई की शाम और भागा-दौड़ी। ठीक चौबीस घंटे बाद मुझे कोलाहल-भरी यांत्रिक नगरी बम्बई छोड़नी थी, हमेशा के लिए। इसलिए भागा-दौड़ी, आपाधापी—दोस्तों से मिलना, मेहमानों को विदा करना, घर का इन्तजाम, सामान की बंधाई और बधाई देने वाले अनजाने चेहरों को चाय पिलाना और उनसे आत्मीय बनकर बातें करना। एक नया मुखौटा चढ़ाकर दो जिन्दगी जीना। ऐसी उलझनों के समय कमलेश्वर का फरमान और राकेश का वारण्ट। कृशन चन्दर का खाका उतारना है। ये सब मिलकर अपने-आपमे एक कहानी बन जाते हैं।

कल कृशन के सामने सारी मुसीबतें रखीं और कहा, "बताइए, ऐसी उलझन में क्या होगा?" कृशन ने कहा, "यह बताओ कि उलझन तुम्हारे दिमाग में तो नहीं है?"

मैंने कहा, "नहीं।"

कृशन ने कहा, "तो कठिनाई कहां है? कहानी को लेकर मेरे दिमाग में कोई उलझन नहीं है, उलझन तुम्हारे दिमाग में भी नहीं है, फिर··· फिर सब हो जाएगा।" कृशन भाई कहते हैं तो हो ही जाएगा।

मैंने पूछा : कृशन भाई, आप कब से कहानियां लिख रहे हैं?

कृशन चन्दर : पहली कहानी तब लिखी थी, जब ६वीं जमात में पढ़ता था। वह अपने पशियन टीचर के खिलाफ एक सटायर था। सन् १६२८ के लगभग की बात होगी···"

मैं : यानी तब मैं पैदा भी नहीं हुआ था!

कृशन : अच्छा हुआ वरना उस कहानी पर मेरी जो पिटाई हु
वह देखते तो शायद तुम खुद रो देते। मैंने तो फिर लिखना ही ब
दिया। दुबारा लिखना शुरू किया सन् ३६ के लगभग एम० ए०
कर लेने के बाद। मार का असर इतना रहा कि इतने लम्बे अर्से
लिखने का साहस ही नहीं हुआ।

मैं : अब तक कितनी कहानियां लिखीं आपने ?

कृशन : तीन सौ से ऊपर।

मैं : तो इनपर कई तरह की प्रतिक्रियाएं हुई होंगी, कई तरह क
आलोचनाएं भी। इनसे आपने क्या सीखा ?

कृशन : आम तौर से प्रशंसा से आदमी खुश होता है। यह स्वाभाविक
भी है। मेरे साथ भी यही होता है। पर अब हमने सीखना शुरू किया है।
किसीने यदि महज़ 'अटैक' करने के लिए कुछ लिखा है, तो हम यह
देखते हैं कि उसके पीछे भावना क्या है ? सबसे अच्छा क्रिटिसिज़्म वह है
जो आपका दुश्मन करता है। क्रिटिसिज़्म को दबाना नहीं चाहिए। खशबू
खुलकर होने देना चाहिए। इससे अन्त में फायदा ज़रूर होता है। जो
लेखक चाहते हैं कि उनकी ज़िन्दगी में केवल प्रशंसा के पुल बने रहें, वे
गलती करते हैं। आलोचनाओं से मैं अपने को ज़रूर सुधारता हूं। जो
बुरी नीयत से बहुत-सी बातें लिखते हैं, उनसे भी मुझे कई बातें मिलती
हैं।

मैं : तब तो आप बहुत मज़बूत हो चुके हैं ?

कृशन : क्यों नहीं, आखिर छब्बीस बरसों से लिख रहा हूं और पिट-
कर लिख रहा हूं। (ज़ोर की हंसी)

मैं : तब तो आप यह भी बखूबी बता सकते हैं कि आपकी नज़र
कहानी क्या है ?

कृशन : डेफिनिशन (परिभाषा) तो कठिन है। "एनी
लाइफ कैन बी काल्ड स्टोरी।" यानी

बन सकता है। हो सकता है मन का ही एक टुकड़ा हो, आप वही पैदा कर दें। किसी एक तार को पकड़कर आखिर तक पहुंचा देना—एक कहानी है। वह तार चाहे पात्र का हो, घटना हो, जीवन का कोई अंश हो। उसके अन्दर क्लाइमैक्स का होना जरूरी है—चाहे वह फिजिकल हो या मेंटल।

मैं : क्लाइमैक्स को आप इतना जरूरी मानते हैं ?

कृशन : राजेन्द्र भाई, मेरे पास एक खत आया है। न्यूयार्क की 'इंटरनेशनल मैगजीन' के एडीटर का खत है। मैं आपको पढ़कर सुना देता हूं। सुनिए—

"यह हमारी कहानी पत्रिका है। इसके लिए आप अपनी कोई श्रेष्ठ कहानी भेजिए। आपको कहानी में कुछ कहना जरूर चाहिए—उसका प्रारम्भ हो, अन्त हो। पूरी कहानी में कहना जरूर कुछ चाहिए।"

(पत्र अंग्रेज़ी में था।)

लगता है, वह एडीटर वहां भी 'एण्टी स्टोरी' का जो आन्दोलन चल रहा है उससे परेशान है।

मैं : मेरा ख्याल है, आप यह बात पाठकों की पसन्द को भी दृष्टि में रखकर कह रहे हैं। है न ?

कृशन : देखिए, जब मैं लिखता हूं तब मेरे सामने पाठक नहीं होता। कोई चीज मुझे जगाती है, झकझोरती है, तब मैं लिखता हूं। जब अच्छी तरह लिख जाती है, तब सोचता हूं, किसीको सुनाऊं। तब मैं समाज के धरातल पर उतरता हूं। उसके बाद छपने भेजता हूं। तब वह पाठकों के हाथ पहुंचती है। और कहानी लिखता ही इसलिए हूं कि वह छपे और उसे पाठक पढ़ें।

मैं : और आप उनकी प्रतिक्रियाएं जानें।

कृशन : हां, हर महीने मेरे पास सात-आठ सौ पत्र आते हैं। कुछ लोग अपनी जिन्दगी की कहानियां लिखकर भेजते हैं। कुछ कहते हैं, फलां पर लिखिए। [illegible] के बाद पाठक का सम्बन्ध हमसे परोक्ष हो

जाता है। तब भी उनके विचार हम तक पहुंचते रहते हैं। लेकिन लिखते समय पाठकों की पसन्द का ध्यान कभी नहीं रखना चाहिए। अगर आपके पास कुछ कहने को है तो आप कहिए, लोग पसन्द करें या न करें। लेखक का यही काम है कि वह बिना भय और पक्षपात के कुछ कहे। यह एक मुश्किल काम है, लेकिन सच्चा काम है। ऐसी चीज़ जो सिर्फ मनोरंजन के लिए लिखी गई हो, नहीं चलेगी। पाठक केवल मनोरंजन नहीं चाहते। वैसे भी लेखक को 'पापुलेरिटी' पाने के लिए कोशिश नहीं करनी चाहिए। जो आप 'फील' करें, वह लिखें। आप अपनी फ़ज़ा में रच जाएं तब लिखें और जब दोनों में तार मिल जाता है, तब पाठक कहां जा सकता है।

मैं : क्या यही आपकी सफलता का रहस्य है?

कृशन : बात कुछ इस तरह कही जाए कि पाठक आपकी पकड़ में आ जाए। वह मानसिक रूप से आपके साथ हो ले। फिर जो आप लिखें वह महत्त्वपूर्ण होगा। वह चीज़ महत्त्वपूर्ण होती है जो उसकी (पाठक की) ज़िन्दगी के पास है। हो सकता है, इसीमें मेरी सफलता का रहस्य हो, यानी मेरे स्टाइल में और कथन में। पाठक जितनी 'इण्टीमेटली' आपके साथ बंधा होगा, वह उतनी ही गहराई से चलेगा। मेरा फिलासफिकल मेकअप ऐसा है कि मैं उन्हीं समस्याओं को लेता हूं, जो मेरी अपनी है। मैं मध्यवर्ग का आदमी हूं। पाठकों को उसमें अपनी छाया मिलती है, इससे अधिक से अधिक लोग पढ़ते हैं। यह मेरे लिए नहीं, किसी भी लेखक के लिए है।

मैं : कृशन भाई, आप शायद हिन्दी की कहानी से भी अच्छी तरह परिचित हैं?

कृशन : हां।

मैं : आपने हिन्दी की कहानियां पढ़ी हैं?

कृशन : आप सब मेरे इतने आत्मीय मित्र हैं कि जब भी आप लोगों की कहानियां कहीं छपी देखता हूं, बिना पढ़े नहीं रहा जाता।

मैं : तो आप एक बात बताइए। 'अश्क' जी आपके मित्र हैं, मेरे भी

अच्छे मित्र हैं। लेकिन उनकी एक बात मुझे खटकी है। वे कहते है—"हम लोग उर्दू कहानी मे जो प्रयोग वर्षों पहले कर चुके हैं, हिन्दी कहानी मे वे अब हो रहे हैं।" आप उर्दू, हिन्दी दोनो की कहानियो से परिचित हैं, आपका क्या खयाल है ?

कृशन : प्रेमचन्द ने सबसे पहले उर्दू मे लिखना शुरू किया। वे हिन्दी-उर्दू कहानी के जन्मदाता समझे जाते है। प्रेमचन्द के बाद उर्दू कहानी में एक बडा 'स्पर्ट' आया। उसमे बेदी, 'अश्क', चुगताई, अन्सारी, मुमताज मुफ्ती, मण्टो, सहेल अजीमाबादी, अहमद नदीम कासमी ऐसे लेखक उभरे जो और ज्यादा रियलिज्म की तरफ गए। उन्होने आंचलिक कहानियां लिखी। तरह-तरह के प्रयोग किए। ये प्रयोग राजनीति और समाज से लेकर अरूप (ऐब्स्ट्रैक्ट) कहानी तक के हैं। इसे 'उर्दू कहानी का स्वर्णयुग' कहा जाता है। यह बात सही है। उस जमाने में हिन्दी मे ज्यादातर ऐसी कहानिया लिखी गई, जिनमे घरेलू वातावरण होता था। लेकिन विभाजन के बाद स्थिति बदल गई—हिन्दी कहानी का रुख ही बदल गया। उसने न केवल वे प्रयोग, जो उर्दू ने किए थे समेटे, वह और आगे बढ़ी। उर्दू कहानी नहीं बढ पाई। हिन्दी की आज की कहानी मे जिन्दगी का ऐसा कोई कोना छूटा नहीं मिलता। जैनेन्द्र, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर से लेकर रेणु, राकेश, भारती, यादव, कमलेश्वर, उषा प्रियवदा, निर्मल और आप (राजेन्द्र अवस्थी) जैसों को लेकर मैं यह समझता हूं। हिन्दी कहानी इससे भी आगे जा रही है, मसलन, शैलेश मटियानी, दूधनाथसिंह आदि। इस वक्त जो हिन्दी कहानी है, बहुत हरी-भरी है, खूबसूरत है। हमारे देश की जो रगत है, जो आबोहवा है, उन सबके रग और किसी भी भाषा की कहानी मे नहीं हैं। हिन्दी कहानीकारो को इसपर फख्र करना चाहिए। उर्दू कहानी के स्वर्ण युग मे हिन्दी कहानी की रफ्तार धीमी थी, अब तेज है, बहुत तेज है। 'अश्क' से यहीं मेरा मतभेद है। आज की हिन्दी कहानी बहुत भर गई     आज को नजूर क्यों न किया जाए, 'अश्क' की यह बात मुझे

समझी नहीं जाती ।

मैं : हिन्दी कहानी में इस समय जो प्रयोग हो रहे हैं, उनके बारे में आपके क्या ख्याल हैं ?

कृशन : हिन्दी में इस समय जो प्रयोग हो रहे हैं, उसी तरह के प्रयोग दुनिया की और बड़ी भाषाओं की कहानियों में भी हो रहे हैं । क्योंकि अब एक विश्व-साहित्य बन रहा है । हमारी जिन्दगी और समस्या का ट्रेंड अब 'वर्ल्ड ट्रेंड' है । जब यहां '[illegible]' कविता की बात चलती है, वहां भी वही आवाज सुनाई पड़ती है । मतलब यह है कि हमारे यहां जो कुछ हो रहा है, दुनिया की गति के साथ ही है । [illegible] में कुछ दोस्तों ने अपनी कहानियां सुनाई थीं । मैं देखता हूं, वही ट्रेंड वहां भी है ।

मैं : क्या आप इस ट्रेंड को अच्छा समझते हैं ?

कृशन : जरूर ! मैं अमल में उस ट्रेंड को अच्छा समझता हूं, जिसमें 'सामाजिक जिम्मेदारी' हो । [illegible] एस्थेटिक रिसपोंसिबिलिटी । ब्यूटी नॉट फार द इण्डिवीजुअल, बट फार द अदर्स आलसो । ब्यूटी मस्ट बी कम्युनिकेबिल । ब्यूटी व्हिच इज नॉट कम्युनिकेबिल इज फारगाटेन ! कहानी में भी यही बात है । यदि आप-अपनी समझ पाठकों तक नहीं पहुंचा सके, तो ब्यूटी नहीं रह जाएगी ।

मैं : हिन्दी में आपको इस दृष्टि से क्या देखने को मिलता है ?

कृशन : हिन्दी में जो प्रयोग हो रहे हैं, उनमें से कुछ अच्छे हैं । हमारी आज की जो समस्याएं हैं, उन्हें लेकर जो धारा चल रही है, बहुत अच्छी है । जो धारा इसके विपरीत है, मैं उसके खिलाफ हूं ।कारण, सृजन सब के लिए सहज और बोधगम्य होना चाहिए । वह मात्र वैयक्तिक न हो । जिसमें 'सामाजिक जिम्मेदारी' है, मैं उसके साथ हूं । जिसमें नहीं है, अन्त में उसका पतन होगा। मेरी मान्यता है कि ब्यूटी इज ए शेयर्ड एक्सपेरीमेंट।'

मैं : और उर्दू कहानी की आज की स्थिति क्या है ?

कृशन : हिन्दी में प्रयोग की स्पीड ज्यादा है । उसका दायरा भी बड़ा

है। विभाजन के बाद उर्दू का दायरा छोटा हो गया है। स्पीड कम है। जितना बड़ा टेलेंट हिन्दी की नई कहानी में आया है, उतना बड़ा टेलेंट उर्दू कहानी में नहीं है।

मैं : अच्छा, कृशन भाई, अब आप यह बताइए कि कथाकार का जिन्दगी के साथ कितना और कैसा सम्बन्ध होना चाहिए ?

कृशन : अच्छा लिखने की पहली शर्त यह है कि कथाकार के पास निजी अनुभवों की कमी न हो। जो लेखक टकी-बकी और रिपेक्टेबल जिन्दगी गुजारते हैं, उनके अनुभव कम होते हैं। ऐसे लेखकों का दायरा और उनकी प्रयोग-शक्ति कम हो जाती है। अपनी चीज़ समझाने के लिए उसे अच्छे पात्र कम मिलते हैं। लेखक का अनुभव, असल में, विस्तृत और फैला हुआ होना चाहिए। उसे उच्चतम वर्ग से लेकर निम्नतम तक का अनुभव हो। एक लेखक की जिन्दगी औरों से एकदम अलग होती है। उसके लिए जरूरी है कि वह एक से अधिक औरतों के सम्पर्क में आए और उन्हें जाने-समझे। इसलिए यदि वह जिन्दगी में अव्यवस्थित है, तो बहुत अच्छा है। जो लोग सीधी, रिस्पेक्टेबिल, साफ तरह से धुली-धुलाई और अगरबत्ती का धुआं देकर जिन्दगी गुज़ारते हैं, उनके लिए अच्छा लेखक बनना बहुत मुश्किल है।

मैं : क्या आपका मतलब है कि हर लेखक को लिखने के पहले वे सब अनुभव स्वयं उठाने चाहिए, जो वह लिखना चाहता है ?

कृशन : मेरा यह मतलब नहीं है। अनुभव पाने के लिए डूबना जरूरी है। मतलब, यदि आप एक 'सिफलिस' के पेशेंट के बारे में लिखना चाहते हैं, तो अस्पताल में जाकर 'सिफलिस' के पेशेंट को देख सकते हैं। बाकी 'परस्पेक्टिव' तो आपमें होना चाहिए। जिन्दगी के अनुभव कहीं खुद भोगकर, कहीं दूसरों के अनुभवों में और कहीं पढ़कर जाने जा सकते हैं। ऐसा न हो कि वहीं जाकर आप खुद रोग के शिकार हो जाएं।

मैं : और शिकार हो गए तो ?

कृशन : तो कोई गिला भी नहीं होना चाहिए। समन्दर में मोती

मैं : क्या आप ऐसा कोई उदाहरण दे सकते हैं ?

कृशन : मैं अपना ही उदाहरण दूंगा। रेलवे की हड़ताल बम्बई में होने वाली थी। मुझसे कहा गया कि मैं एक कहानी लिख दूं और उसमें हड़ताल का समर्थन करूं। मैंने कह दिया—"भई, यदि कोई ऐसी चीज होगी जो मुझे खींचेगी, तब तो मैं जरूर लिखूंगा।" आखिर वह हड़ताल नहीं हुई। यदि मैं पार्टी के साथ बंधा होता तो मुझे जरूर लिखना पड़ता। लेखक एक अलग 'प्रोसेस' है, उसे निर्बाध होना चाहिए।

मैं : तो आप कहानीकार की निजी स्वतन्त्रता को कहां तक तरह देंगे ?

कृशन : पूरा मतलब समझाइए।

मैं : मेरा मतलब है कि कहानीकार को कहां तक अपनी जिन्दगी में या छोटे-छोटे दायरों में स्वतन्त्र होना चाहिए ?

कृशन : स्वतन्त्रता कभी अनन्त नहीं रही। वह सीमित होती है। मैं उड़ना चाहता हूं, पर पृथ्वी का आकर्षण नहीं उड़ने देता। यदि स्वतन्त्रता निर्बाध होती तो शायद दुनिया ही न रहती। लेखक की स्वतन्त्रता भी निर्बाध नहीं हो सकती। वैसे स्वतन्त्रता 'पॉजिटिव' होती है और 'निगेटिव' निभाने और 'निगेटिव' सीटम को समझने की कोशिश करनी चाहिए। लेखक की समझदारी का दायरा आम आदमी से बहुत बड़ा होता है। इससे वह चीजों को परखे, जाने और उनका गहन ज्ञान हासिल करे, पर उनमें खुद न पड़ जाए। भिखारियों पर लिखते समय उसे दो-चार दिन फुटपाथ पर बैठना पड़ सकता है, भीख भी मांगनी पड़ सकती है। दो-चार दिन हवालात भी जाना पड़ सकता है। जिन्दगी का पूरा अनुभव उठाने के लिए यह सब करना पड़ सकता है, लेकिन उसे कभी असामाजिक और अवैधानिक काम नहीं करना चाहिए।

मैं : कहा जाता है, आज की कहानी हमारी जिन्दगी की असल कहानी होती है। वह आसपास के माहौल से जुड़ी होती है। आपका क्या ख्याल है ?

कृशन : हर कहानी में लेखक अपना कुछ न कुछ अंश जरूर देता है। इस तरह कहानी में उसकी आत्मा तो होती है, पर यह चौथाई सत्य है। कहानी में चूंकि औरों की ज़िन्दगी भी होती है, इसलिए वह उसकी अपनी कहानी नहीं रह जाती; वह सबकी कहानी बन जाती है। इसलिए यह कहना कि आज की नई कहानी लेखक की ज़िन्दगी का ही अक्स है, बिलकुल सही नहीं है। वह कुछ उसकी ज़िन्दगी और कुछ उसके आस-पास की ज़िन्दगी होती है। आज की हिन्दी कहानी में कई 'पर्सपेक्टिव' और कई 'एंगिल' हैं, जिसे लोग अलग-अलग ढंग से देख रहे हैं। यह बड़ी बात है। ज़िन्दगी के बारे में तुम्हारे अनुभव और हैं, राकेश के और, कमलेश्वर के और, लेकिन जब इन सबको मिलाया जाए, तो उनमें एक 'कामन पाइण्ट' ज़रूर मिलेगा। यही पाइण्ट आज की हिन्दी कहानी को बल दे रहे हैं और सशक्त बनाते हैं।

मैं : कहा जाता है कि यहां की कहानी विदेशी प्रभाव के बाद लिखी गई है। 'अश्क' ने भी यही कहा है। आप क्या कहते हैं ?

कृशन : मेरे ख़याल में यह पूरी तरह सही नहीं है। वैसे यह आरोप उर्दू और बंगला कहानी के बारे में भी लगाया जा रहा है। मैं दूसरी भाषाएं नहीं जानता, इन तीनों के बारे में कह सकता हूं। सचाई इतनी ही है कि जैसे यान्त्रिक क्षेत्र में हमने बाहर से बहुत-सी बातें सीखी हैं, कहानी लेखन में भी हमने कई बातें बाहर से ली हैं। पर बाहर वालों ने भी हमसे बहुत बातें ली हैं। हमें यह न भूलना चाहिए कि कहानी की सबसे पहली किताब, दुनिया में सबसे पहले भारत में ही लिखी गई है। —'पंचतंत्र' है। हमने बहुत दिया है, बहुत लिया है। लिया ही लिया सही नहीं है। लेने के बाद भी हमने उसे ग्रहण कर अपना बनाया। हिन्दी कहानी का रूप उसका अपना है, बाहर का नहीं है। वैसे कुछ ऐसे हैं कि बाहर जाते हैं और उनकी तुरन्त नकल कर लेते हैं लेकिन 'पैटर्न' हमारी हिन्दी कहानी में अपनी जड़ें नहीं जमा पाए—चाहे वे हों चाहे पश्चिम के। हिन्दी कहानी अधिकाधिक 'आधुनिक'

# कृश्न चन्दर-साहित्य

**उपन्यास**

| | | |
|---|---|---|
| चांदी का घाव | ... | ५'०० |
| पराजय | ... | ४'५० |
| सितारों से आगे | ... | २'५० |
| मेरी यादों के किनार | ... | ३'०० |
| उलटा वृक्ष | ... | ३'०० |
| एक गधे की आत्मकथा | ... | २.०० |
| एक गधे की वापसी | ... | २'०० |
| ग़द्दार | ... | २'०० |
| एक गधा नेफा में | ... | ४'०० |

**कहानियां**

| | | |
|---|---|---|
| पूरे चांद की रात | ... | ३'०० |
| मिट्टी के सनम | ... | ३'०० |
| कश्मीर की कहानियां | ... | ३'०० |
| सपनों का कैदी | ... | २'०० |
| दिल, दौलत और दुनिया | ... | २'५० |
| आधे घंटे का खुदा | ... | ३'५० |
| प्यास | ... | २'०० |
| फिल्मी फुलझड़ियां | ... | २'०० |

**नाटक**

| | | |
|---|---|---|
| दरवाज़े खोल दो | ... | २'०० |

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली